

सर्व जिनागम पीडीएफ ग्रुप



स्वाध्याई बंधुओ तक
अवश्य पहुंचाए
निवेदक: सौरभ जैन

जैन एकता मंच



हम
सब
एक
हैं



सर्व जिनागम पीडीएफ ग्रुप

9993602663/7722983010

जैन साहित्य एवं मंदिर

उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मंदिर में उपयोग हेतु उपकरण और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है !

(पांडुशिला, सिंघासन, छत्र, चंवर प्रातिहार्य, जापमाला, मंगल कलश, पूजा बर्तन चंदोवा, तोरण, झारी)



शुद्ध चांदी के उपकरण ऑर्डर पर निर्मित किये जाते हैं।

नोट :- हमारे यहाँ घरों में उपयोग हेतु, साधुओं के उपयोग हेतु, अनुष्ठानों में उपयोग हेतु शुद्ध देशी घी भी ऑर्डर पर उपलब्ध कराया जाता है !

सौरभ जैन (इंदौर)
9993602663
7722983010

सभी दिगंबर जैन ग्रंथों की पीडीएफ प्रतिदिन निशुल्क प्राप्त करने के लिए संपर्क करें



जय जिनेन्द्र



गाय का शुद्ध देशी घी

शुद्धता पूर्वक बनाया गया देशी घी
चातुर्मास में साधु ब्रती एवं धार्मिक
अनुष्ठानों को ध्यान में रख कर
बनाया गया शुद्ध देशी घी

घी ऐसा की दिल
जीत जाये



संपर्क:-CALL &
WHATSAPP:
9993602663
7722983010







स्वदेश-समर्पित, त्याग और तलवार के धनी—

भामाशाह

एवम्

ठा. ताराचन्द

डॉ राजेंद्रप्रकाश भटनागर

पीएच डी (इतिहास)

पीएच डी (आयुर्वेद)

श्री ताराचन्दजी कावेडिया स्मारक सघ
सादडी (जिला पाली) राजस्थान

प्रकाशक—

श्री ताराच दत्त कावेडिया स्मारक सघ
सादडी, जिला पाली
राजस्थान

प्रथम संस्करण, 1987

(वि.सं. २०४३)

सर्वाधिकार—लेखवाचीन

मूल्य — छत्तीस रुपये

मुद्रक

ग्रोम प्रिंटर्स

36 भूतमहल उदयपुर 313001

BHAMASHAH AND THAKUR TARACHAND

by

Dr Rajendra Prakash Bhatnagar

Ph D (History)

Ph D (Ayurved)

SHRI TARACHAND KAVEDIA SMARAK SANGH

Sadr: (Distt Pali) Rajasthan

समर्पण



राष्ट्रवीर प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम)



समर्पण

जो स्वयं स्वतंत्रता, स्वदेश प्रेम और स्वदेशाभिमान के साक्षात्
मूर्तरूप थे तथा जिनके अपूर्व त्याग शौर्य और बलिदान के
उच्च आदर्श ने भामाशाह एवं ताराचन्द जैसे अनेक
'त्याग और तलवार के धनी' महापुरुषों का निर्माण
किया और उन्हें नित्य प्रेरणा दी उन

प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप

को

पावन स्मृति को

यह कृति

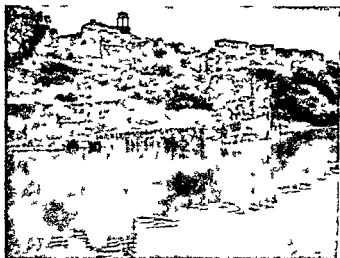
सादर-साभार समर्पित

□

डॉ राजेन्द्रप्रकाश भटनागर

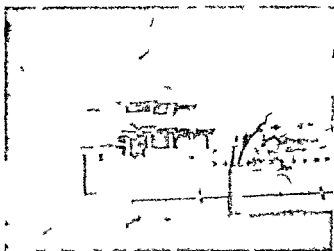


भामाशाह महाराणा प्रताप को धन समर्पित करते हुए ।



रणथम्भोर का अजेय दुर्ग जहाँ शाहू भारमल्ल दोघकाल तक किलदार रहा

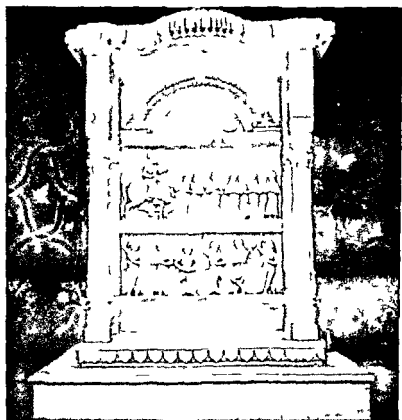
भारत के सब गढ़न में मोटा रणथम्भार ।
तोरण में चित्ताड बड़ा उदगम जोहर थम्भार ॥



सिंहवाहिनी महिषामुरमदिनी चण्डिका देवी का मंदिर जावर ।
इसका निर्माण वसंतगढ़ के महत्तर जेतक ने सवत 703 (646 ई) में
कराया था । काला तर में इसका जीर्णोद्धार भामाशाह ने कराया ।



भामाशाह और ठा ताराचन्द, मालवे की लूट से प्राप्त 25 लाख रुपये
 और 20 हजार अशफिया महाराणा प्रताप को चूलिया
 (ईडर) गाव मे भेंट करते हुए ।



ताराचन्द छत्री का अतवर्ती सती-शिला-फलक
 'वीरन के आकाश मे प्रगट भये यो ताराचन्द ।
 उदित देख शशि समनिशा पातल जिय आनन्द ॥

आमुख

डॉ गोपीनाथ रामो

एम ए, पीएच डी डी लिट

निदेशक, राजस्थान इन्स्टीट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च

एवम

मानद निदेशक, सेक्टर फार राजस्थान स्टडीज

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

नागरिक जीवन और राज्यमन्त्रा के सम्बन्ध में प्रशासन और राष्ट्रहित की भावना का बड़ा महत्व है। इस पुनीत भावना के अनुसार ही प्रशासक का व्यक्तित्व एक प्रेरक तत्त्व बनता है। इसके अभाव में व्यक्ति का भौतिक व निजी स्वाध ही लक्ष्य के रूप में शेष रह जाता है। वास्तव में प्रशासन राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था का सनिक हो या असनिक हो तत्र है और अधिनारी उसके यत्र होने हैं। ऐसे अधिकारी राज्य या राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में शासन की व्यवस्था करने हैं। विजय, सफलता और उन्नति इस सत्य की इतिहास द्वारा प्रमाणित करत हैं।

यह प्रशासन के आदर्श का प्रतिनिधित्व हम भामाशाह और उनके उत्तराधिकारियों में पात हैं, जिन्होंने प्रशासक व सनिक की हैमियन से भवद की निष्ठापूर्वक सेवा की। सेवा लाभ या दम स वभी न जुडी क्योंकि उसमें वलिगन त्याग-और नि स्वाध के तत्व बढ बलवान् थे। भामाशाह जहा हल्हीपाटी में तलवार बजा सकत थे वे प्रशासन द्वारा उन कष्टों के दिनों में अपने स्वामी प्रताप के राज्य को सुदृढ़ और सुशासित रूप में उभार सके। भामाशाह ने अपने पिता की परम्परा की प्रतिष्ठा की अधिक प्राणवान् बनाया जिसके फलस्वरूप उनके वंशज भी उनके अनुसार राज्य के प्रधान बने रहे। इस कावडिया परिवार के हाथ में पीडियों तक प्रधान बना रहना कोई साधारण घटना नहीं थी। समय समय राज्य के लिए धन जुटाना, सना का सचालन करना प्रजा को धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से सतुष्ट रचना, ऐसी उपलब्धिया थीं जिन्हें शायद आगे आनेवाले अन्य वंशों के प्रधान नहीं अर्जित कर सक। भवद के गौरव, प्रतिष्ठा और शासन व्यवस्था की अधुणा बनाध रखने में भामाशाह का पूरा योगदान था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

इसी परिपाटी की इनके भाई तारावन् वंशज जीवाशाह और अण्णराज ने अपनी काय-कुशलता में खूब निभाया। स्यापत्यकना में तारावावडी अपने दग की भनूठी है जिसने साम्भ की वावडी अपत्र देवन को नहीं मिलती।

हमारे विद्वान् लेखक डा राजेन्द्रप्रकाश भटनागर माहव बधाई के पात्र हैं जिन्होंने समसामयिक ताम्रपत्रों शिलालेखों, परवाना पट्टावलिया, माहित्यग्रन्था तथा सद्म ग्रन्थों का उपयोग कर भामाशाह के व्यक्तित्व को बड़े शाश्वत दृष्टि से उभारने में तथा उनके धनुज ताराचन्द व वंशधरों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने में स्तुत्य प्रयत्न किया है। हम पुस्तक में कई अज्ञात घटनाएँ हमारे सामने आई हैं। सम्भवतः मरी जानकारी में भामाशाह और उनके उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में ऐसा खाजपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है जिस प्रमाणों व तर्कों से सजाया गया हो। कई घटनाएँ जो इसमें समावेशित की गई हैं वे इस महान् आत्मा के जीवन का दर्पण हैं। इस ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग अत्युत्तम है जो भविष्य के शोध का आधार बनना इस आशा के साथ लेखक महादय का मैं पुनः अभिनन्दन करता हूँ।

उदयपुर

वसंतपंचमी 3187

गोपीनाथ शर्मा

प्राक्कथन

मध्ययुगीन राजस्थान के इतिहास में मेवाड़ के महाराजा प्रताप का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने देशभक्ति कुलाभिमान और त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर भारत के इतिहास में एक स्थान निमित्त कर लिया है। प्रताप की व्यक्तित्व और छादश के अनुरूप ही उनका प्रवास भामाशाह हुआ। प्रताप की विभिन्न रानतिका प्रशामनिक और प्रबन्ध सबधी कार्यों में भामाशाह का भी विशिष्ट योगदान रहा।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भामाशाह और उसके वंशजों की उपलब्धियाँ पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तथ्यात्मक आलाचन प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में राजाशा के अतिरिक्त शासन और समाज के अन्य क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तित्वों के वृत्तित्व विषयक इतिहास-लेखन की आवश्यकता की प्रकट किया गया है। इतिहास का यह पक्ष अब तक अधूरा रहा है।

ग्रन्थ में वर्णित भामाशाह के वंश और पिता भारमल्ल के विषय में विवरण काफी उपयुगी है। भारमल्ल ने रणथम्भोर की मिलादारी की जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए मेवाड़ राज्य की प्रति जा निष्ठा और योग्यता प्रदर्शित की, उस सबब से दिया गया कर्तृपोरूप विवेचन नये तथ्यों का प्रकट करता है।

लालक ने भामाशाह की बाल्यकाल में प्रताप से घनिष्ठता हल्दीघाटीयुद्ध में उसकी और उसके भाई ताराचन्द की युद्धकुशलता तथा इससे सम्बन्धित अन्य घटनाओं पर अच्छा प्रकाश डाला है। मेवाड़ में नयी व्यवस्था प्रबन्ध कायम करना तथा उसमें भामाशाह द्वारा आर्थिक योगदान आदि नथों को युक्तिपुर सर सम्प्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो मजबूत स्तुत्य है।

भामाशाह के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में उसके अनुज ताराचन्द सबधी उपलब्धियाँ पर विवरण दिया गया है। भामाशाह के साथ ताराचन्द ने भी हल्दीघाटी युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उस प्रताप ने मेवाड़ का हार्मिम बनाया था। उसने सादसी में रहते हुए न केवल सैनिक अभियानों का संचालन किया अपितु उसने वहाँ मुगल दरबार की जाला पर मगीत कला और साहित्य को प्रथम देकर उनकी उपरति में रुचि ली थी। वहाँ उसके द्वारा नियमित निर्माण कार्य अब तक विद्यमान हैं। अब तक उपरान्त इतिहास में ताराचन्द का व्यक्तित्व इतना उभर कर सामने नहीं आता जितना इस ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है। भामाशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जीवाशाह और उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र अन्नमराज मेवाड़ का 'प्रधान' नियुक्त हुआ। अन्नमराज द्वारा डूंगरपुर पर आक्रमण का वृत्तन यहाँ प्रथम बार विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

हमारे विज्ञान लेखकों राजेन्द्रप्रकाश भटनागर साहब बघाई व पात्र हैं जिन्होंने हममामयिक ताम्रपत्रों शिलालेखा, परवानों पट्टावलिया, माहिर्यग्रंथों तथा सदमय ग्रंथों का उपयोग कर भामाशाह के व्यक्तित्व को बड़े शाधपूर्ण दृष्टि से उभारने में तय्यार उनका अनुज ताराचंद व वशधरा के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने में स्तुत्य प्रयत्न किया है। इस पुस्तक से कई घात घटनाएँ हमारे सामने आई हैं। संभवतः हमें जानकारी में भामाशाह और उनके उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में ऐसा खाजपूर्ण प्रकाशित नहीं हुआ है जिस प्रमाणा व तर्कों से सजाया गया हो। कई घटनाएँ जो इसमें समावेशित की गई हैं वे ही महान् आत्मा के जीवन का दर्पण हैं। इस ग्रंथ का परिशिष्ट भाग अत्युत्तम है जो भविष्य के शाध का आधार बनगा इस आशा के साथ लेखक महादय का मैं पुनः अभिनन्दन करता हूँ।

उज्जयपुर

वम तपस्वी 3 1 87

गोपीनाथ शर्मा

प्राक्कथन

मध्ययुगीन राजस्थान के इतिहास में मेवाड़ के महाराजा प्रताप का नाम रम्य है। उन्होंने देशभक्ति कुलाभिमान और त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर भारत के इतिहास में एक स्थान निर्मित कर लिया है। प्रताप के वीरत्व और आदर्श के अनुरूप ही उनका प्रधान भामाशाह हुआ। प्रताप के भिन्न राजनितिक प्रशासनिक और प्रबंध संबंधी कार्यों में भामाशाह का भी शिष्ट योगदान रहा।

प्रस्तुत ग्रंथ में भामाशाह और उसके वंशजों की उपलब्धियाँ पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तथ्यात्मक आलाचन प्रस्तुत किया गया है। ग्रंथ के प्रारम्भ में राजाओं के अतिरिक्त शासन और समाज के ग्रंथ क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तित्वों के कृतित्व विषयक इतिहास-लेखन की आवश्यकता का प्रकट किया गया है। इतिहास का यह पक्ष अब तक अछूरा रहा है।

ग्रंथ में वर्णित भामाशाह के वंश और पिता भारमल के विषय में विवरण काफी उपयोगी है। भारमल ने रणधम्मर की किलेपारा की जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए मेवाड़ राज्य के प्रति जो निष्ठा और योग्यता प्रदर्शित की उस संबंध में दिया गया ऊहापोह रूप विवेचन नये तथ्यों को प्रकट करता है।

लेखक ने भामाशाह की बाल्यकाल में प्रताप से घनिष्ठता हथीघाटीयुद्ध में उसकी और उसके भाई ताराचन्द की युद्धकुशलता तथा इसमें सम्बंधित अथ घटनाओं पर अच्छा प्रकाश डाला है। मेवाड़ में नयी व्यवस्था प्रबंध कायम करना तथा उसमें भामाशाह द्वारा आर्थिक योगदान आदि तथ्यों को युक्तिपूर्वक सप्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है, जो सबका स्तुत्य है।

भामाशाह के अतिरिक्त इस ग्रंथ में उनके अनुज ताराचन्द संबंधी उपलब्धियाँ पर विवरण दिया गया है। भामाशाह के साथ ताराचन्द ने भी हन्दी घाटी युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उन प्रताप ने मेवाड़ का हस्तगत बनाया था। उसी सादही में रहते हुए न केवल मलिक अभियानों का संचालन किया अपितु उसने बड़ा मुगल दरबार की सेवा पर समीत कला और साहित्य को प्रथम दत्त उनकी उन्नति में रुचि ली थी। बहाउद्दीन द्वारा रचित गये निर्माण कार्य अब तक विद्यमान हैं। अब तक उपलब्ध इतिहास में ताराचन्द का व्यक्तित्व इतना उभर कर सामने नहीं आता जितना इस ग्रंथ में स्पष्ट किया गया है। भामाशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जीवागत और उनकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र सप्तपराज मेवाड़ का प्रधान नियुक्त हुआ। सप्तपराज द्वारा दूधपुर पर आक्रमण का वर्णन महा प्रथम बार विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार इस कृति में भामाशाह और ताराबंद के इतिहास पर सर्वांगीण रूप में प्रकाश डाला गया है। नवीन घटनाओं और तथ्यों को इतिहासपरक तक शक्ती में प्रस्तुत कर अपनी भाषाशास्त्री को प्रकट करने में यह रचना विशेष रूप से सहाय्य बन गयी है।

इस ग्रंथ के लेखक डॉ. रमेशचंद्रप्रकाश भटनागर बघाई के पात्र हैं। आशा करता हूँ कि वह इसी प्रकार शोध मोक्षपूर्ण अन्य ग्रंथों को लिखकर इतिहास की महत्वपूर्ण कड़ियाँ को प्रकट करने में योग देंगे।

डॉ. बी. एस. मायूर
भावाय इतिहास विभाग
मुंबाई विश्वविद्यालय
उदयपुर (राज.)

दो शब्द

अपनी अस्मिता और गौरवपूर्ण इतिहास को जानने और समझने की ललक सभी सभ्य ममाला में होती है। सामाजिक मर्यादा काल में तो यह ललक अधिक तीव्र हो जाती है। दरअसल इसी ललक से हम इतिहास के फलक में वर्तमान को विभिन्न कोणों तथा तरीकों से देख सकते हैं लेकिन इसे देखने और समझने में हमारी दृष्टि एकांगी तथा पूर्वाग्रही नहीं हो, यह महत्वपूर्ण है।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि सम्राट हर्षवर्द्धन (606-647 ई.) के पश्चात् भारत वर्ष में राजनीतिक दृष्टि से केन्द्रीय सत्ता का अभाव में दून और विघटन की एमी विषम स्थिति उत्पन्न हुई कि विदेशियों का बड़ा आकर अपार सम्पत्ति का लूटन और अपना शासन स्थापित करने में विशेष अवरोध नहीं आया। मध्ययुगीन हम राजनीतिक पराजय का मुख्य कारण राष्ट्रीय एकता का अभाव राजनीतिक चेतना की कमी कुशल संगठनशक्ति का अभाव और सत्त स्वार्थों का प्राबल्य रहा। विदेशी आक्रान्ताओं और भारतीयों के मध्य सत्ता संघर्ष होता रहा। जन नेताओं के ईमानदार प्रयत्नों की कमी भी इसका एक कारण रही। इस सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि जब भी राष्ट्रीय एकता के लिए प्रतिबद्ध होकर जनता और शासकों ने मिलकर युद्ध लड़ा वहाँ विजयश्री ही प्राप्त हुई। इतिहास में उन्हीं जननेताओं को याद किया जाता है जिन्होंने राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता और गौरव के लिए त्याग और बलिदान किए हैं। वे ही महापुरुष इतिहास के धवन नभ हैं और अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रेरक होते हैं। समाज और राष्ट्र के विकास समृद्धि और उन्नयन में ऐसे महापुरुषों का योगदान अनेकनीति रहता है।

इतिहास मान तिथि-पत्रक नहीं है, वह हमारी सांस्कृतिक राजनीतिक जीवन धारा सामाजिक संस्कृति और हमारे महापुरुषों की गाथा भी है हमारा सांस्कृतिक सामाजिक धरोहर को समझने परखने तथा अस्मिता का पट्टेबान की प्रक्रिया भी है। इन महापुरुषों की जीवनपद्धति उनके क्रिया कलाप हमारे लिए आदर्श और प्रेरक हैं। इसीलिए इतिहास व संस्कृति के समर्थ और मनुष्यविरुद्ध अध्ययन का प्रयास जरूरी है। इतिहास अथवा रूढ़िवादी दलितता प्रवृत्ति तथा नाहित्यिक ग्रंथों का अध्ययन चिंतन कर हम विश्लेषण करना है। यह चिंतन अम साध्य व समय साध्य कार्य है। तात्कालिक लाभ और सम्मान नहीं रह कर चिंतन और निष्ठा से ही यह प्रयत्न सफल हो सकता है। हमें इतिहास का गहन प्रकाश अन्तर्गत की यह कृति भामाशाह और ताराबन्ध' है। इस कृति ने न केवल नगर व मंडल शोधक और अपने विषय में गहन विज्ञान है। इस कृति में न केवल नगर ने भामाशाह व ताराबन्ध के सन्दर्भ में अनेक महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ का सम्मिलित किया है।

राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि राजपूत शासन में वश्य और कायस्थ योद्धा के साथ कुशल संगठक तथा प्रशासक के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। कीर्तिपुरुष महाराणा प्रताप के साथ दानवीर भामा शाह का स्मरण इतिहास का एक अकाट्य प्रमाण है। वश्य वधु भामाशाह और ताराचंद भारमल्ल के पुत्र थे और प्रताप के मित्र। भारमल्ल कावडिया गोत्र के ओसवाल जन थे। भारमल्ल स्वयं वीर व कुशल प्रशासक थे तथा लम्बे समय तक रणयम्भोर के किलेदार रहे हैं। राणा मग्नसिंह (सागा) ने अपनी पत्नी रानी कमवती तथा पुत्र विजयसिंह व उदयसिंह को रणयम्भोर भेज दिया था। भारमल्ल राणा सागा की मृत्यु के पश्चात् राजपरिवार के साथ चित्तौड़ आ गये थे। उदयसिंह ने भारमल्ल की कृत व्योलीयता व विश्वसनीयता व कूटनीतिज्ञता के कारण एक लाख का पट्टा देकर सामन्त बनाने में सहायता किया था। अक्टूबर में विसं 1624 में चित्तौड़ पर हमला किया तब भारमल्ल चित्तौड़ ही रहे और युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए लेकिन उन्होंने अपने दोनो पुत्रों को उदयसिंह के साथ कुम्भलगढ़ भेज दिया था।

भामाशाह राणा प्रताप से सात वर्ष छोटे थे और ताराचंद भामाशाह से चार वर्ष। भामाशाह के चारित्रिक गुण और कार्यों का वर्णन इतिहास का एक अविस्मरणीय पन्ना है। उनके लघु भ्राता ताराचंद का योगदान भी रेखांकित किया जाता है। मेवाड़ के पुनर्गठन और पुनर्व्यवस्था का श्रेयांकित करने में प्रधान भामाशाह का सराहनीय योगदान रहा है। वे अनुभवी और कुशल प्रबंधक थे। देशभक्ति और स्वामीभक्ति के लिए भामाशाह एक दृष्टांत हैं। सत्ता का प्रतीक उन्हें अपने कर्त्तव्य से गिना नहीं सका। मुगलों के युद्धोन्माद से मेवाड़ की आर्थिक व साम्य स्थिति विगड़ गई। राजकोष खाली हो गया घन जन की हानि हुई और ऐसी विपन्न स्थिति में भामाशाह ने अपने पास का सम्पूर्ण धन महाराणा प्रताप को मेवाड़ की अस्तित्व रक्षा के लिए अर्पित कर दिया। त्याग व दान की भामाशाह जीवन्त मूर्ति थे। दानी भामाशाह को मेवाड़ हमेशा याद करता रहेगा। भामाशाह के सदृश उनके लघु भ्राता ताराचंद वीर व कुशल प्रशासक थे। गोडवाड़ प्रदेश के गवर्नर नियुक्त होने के पश्चात् ताराचंद ने अपने क्षेत्र के समुचित विकास व उन्नयन की ओर ध्यान दिया। ताराचंद की स्थापत्य साहित्य संगीत तथा ललित कलाओं के प्रति गहरी रुचि थी। उनके आश्रय में कई संगीतज्ञ नृत्य साहित्य प्रेमी व कलाप्रेमी रहे हैं। उस जनसंख्या के काल में ललितकलाओं की प्रारंभिक ध्यान देना तथा प्रोत्साहित प्रेरित करना एक महत्वपूर्ण बात थी। दुर्भाग्य से ताराचंद की मृत्यु 44 वर्ष की आयु में ही हो गई।

वस्तुतः जन घमावलम्बी उदारधार्मिक सहिष्णु भामाशाह और ताराचंद ने मेवाड़ के शौर्य और सम्मान को अक्षुण्ण बनाए रखने में अपनी कारगर भूमिका का निवाह दिया है।

ऐसे कीर्तिपुरषो पर रचनात्मक लेखन कम नि सदेह एक प्रशसनीय काय है । इन महान विभूतियों की जीवन गाथा प्रेरणा और प्रोत्साहन देती है व पथ प्रदर्शक भी है । डा राजेन्द्रप्रकाश भटनागर न इनके समग्र जीवन को समाकलित कर गौरवपूर्ण व धर्मसाध्य काय किया है । कृति का परिणिष्ट भी महत्वपूर्ण व विशिष्ट है । डा भटनागर की भाषा शली नि सदेह प्रभावित करती है । उनके सरल शांत व परिस्थिती स्थभाव की छाप इस कृति में है । राष्ट्रीय अस्मिता तथा गौरव के लिए मध्यपरत वरमान पीढ़ी के लिए यह कृति प्रेरक हागी, ऐसी आशा है ।

विश्वास है सुधिजन इस कृति का हार्दिक स्वागत करेंगे ।

उज्जयपुर

दि 10 फरवरी, 87 ई

डॉ लक्ष्मीनारायण नन्दवाना

सचिव

राजस्थान साहित्य अकादमी

उज्जयपुर ।

शुभसम्मति

पृथ्वीसिंह मेहता

विद्यालकार

संग्रह-हमारा राजस्थान (अर्थात् प्राधुनिक राजस्थानी भाषा भाषी प्रदेश का ऐतिहासिक पर्यालोचन), बिहार एवं ऐतिहासिक दिग्दर्शन

भारतीय इतिहास में प्रायः राजा महाराजाओं के कार्यों का ही वर्णन होता रहा है। ऐसे बहुत कम व्यक्तित्व हैं जिनका उल्लेख राजा महाराजाओं की वंश शाटिका की पार वर जाता तब पट्टण पाया है। भवाह के भामाशाह उन छोटे से व्यक्तित्व में प्रथमतः है जिन्होंने अपने प्रथम पराक्रम प्रसाधारण राजनीति में शुभ वृत्ति प्राप्त स्वामी (अपने राज्य की प्रभुशक्ति के प्रति) भक्ति और धर्म त्याग का ऐसा उदाहरण पेश किया जो भारतीय जनता के हृदय में आज उदाहरण रूप धारण कर लोगों को प्रेरणा देता रहता है। स्वामी-प्रीति पर सब कुछ बहाने वाले। धर्मियों का ज मदाता कुल हो यही हमारा। (गुरुकुल बागड़ी में गाये जाते कुलगीत की एक वही) और जो देश के धर्मियों का आदेश मान बन गया सा लगता है।

सचिन दुर्गाय स भामाशाह के जीवन पर अभी तक कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री भारत की या किसी भी अन्य देशी विदेशी भाषा में उपलब्ध नहीं थी। मेरे मित्र श्री राजद्रप्रकाश जी भट्टाचार ने अपनी इस छोटी सी प्रियता में पहली बार उनके जीवन पर विधिवत रूप से प्रकाश डालने का जतन किया है और साथ ही भामाशाह के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन भी उन्होंने पहली बार प्रस्तुत किया है जिसके लिए हम सब बधाई लोग उनका धामा मानते हैं और आशा है कि आगे आने वाले दूसरे लोग भी उस ऐतिहासिक महापुरुष तथा अन्य ऐसे ही व्यक्तित्व के जीवन पर इसी दिशा में प्रकाश डालने का जतन करेंगे, जिससे राजस्थान इतिहास का जो स्वरूप जनता के सामने आता रहा है वह केवल एक जाति या वर्ग विशेष का स्तुति गान न होकर राजस्थान की मारी जनता के पराक्रम और क्रियाकलापों का क्रमिक और समुचित इतिहास बन सके।

शिवकुटी उदयपुर

पृथ्वीसिंह मेहता

प्रस्तावना

इतिहास का निर्माण राजा और प्रजा के द्वारा होता है। केवल घटनाओं का ही इतिहास नहीं है। इतिहास में समाज के हर क्षेत्र की उन्नति और जनता के श्रम को स्वीकार किया जाता है। पूरा इतिहास यही है जिसमें मनुष्य के माथे शासितवर्ग के सब प्रकार के योगदान को क्रमिक रूप में प्रदर्शित किया जाता है। जब शासकवर्ग का प्रभुत्व रहा उनके काल और संरक्षण लिखा गया इतिहास एकांगी और उन तक ही सीमित रहा परन्तु देश की स्वतंत्रता के पश्चात् शासक विशेष के साथ जन प्रतिनिधियों द्वारा अज्ञित की गई लक्ष्मियों को सर्वांगीण रूप से प्रस्तुत करने की आवश्यकता अनुभव की जानी है, जिससे समाज और देश के किसी न किसी क्षेत्र पर प्रभाव पड़े बिना नहीं सकता। समाज के ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों के राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, कला, विज्ञान आदि विभिन्न परिवेशों में समुचित मूल्यांकन को समसामयिक प्रमाणों और साक्ष्यों के माध्यम से प्रकट करने से ही इतिहास पूरा बन पाता है। ऐसा ही इतिहास राष्ट्रियता को जागृत कर सकता है समाज को नया जीवन, प्रेरणा और उदबोधन दे सकता है। हर देश और प्रदेश के ऐसे व्यक्तित्वों का मूल्यांकन भी तत्कालीन परिस्थितियों तथा नैतिक व सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं के आधार पर ही किया जाना चाहिए इतिहासकार यह न भूले कि अन्तर्-काल परिस्थितिवशात् ये मूल्य और मान्यताएँ हमेशा परिवर्तित होती रही हैं। वर्तमान परिस्थितियों और विचारों के आधार पर आज से दो-तीन सौ वर्षों के अधिक पुराने व्यक्तियों के व्यक्तित्व को आका नही जा सकता। ऐसा करना अति ऐतिहासिक भूल होगी।

इतिहास की विभिन्न कड़ियों को बटार कर अब नवीन-स्वदेशीय इतिहास निर्माण की आवश्यकता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का आज उसके व्यक्तित्व से ही मूल्यांकन किया जा सकता है।

पुराने समय में राजा और प्रजा के लिए उसका राज्य ही राष्ट्र था, उनके हितों के क्रियाकलाप उसके लिए ही समर्पित होते थे। भारतवर्ष के अन्दर मानभूमि में सकेत उसके राज्य से ही किया जाता था किन्तु भारत के बाहर वह भारत की भाँती के रूप में समझा जाता था।

हमारी परम्पराएँ राजनीति और समाज के हर क्षेत्र में, निश्चित रूप से नए आघातों व्यवधानों और अन्तरालों के बावजूद अविरल रही हैं। अतः उनका मूल खोज पाना बहुत कठिन है फिर भी व्यक्ति विशेष के क्षेत्र विशेष में योगदान को प्रकट किया जाना सुगम है।

भगवद् इतिहास में शासकों के अनिरीकित महापुरुषों की गव लम्बी सूची प्रस्तुत की जा सकती है जिन्हां विभिन्न क्षेत्रों में देश-काल-परिस्थिति के अनुरूप महत्वपूर्ण योगदान किया। ऐसे महापुरुषों में भामाशाह और उमक भाई ताराबा-या नाम अग्रपंक्ति में सम्मिलित किया जा सकता है। इन बांधुओं और उनके यशों के कारणों पर ऐतिहासिक परिप्रदय में एक विवचन, सर्वोपेक्ष और मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयत्न इस कृति में किया गया है।

इस काम के लिए मुझे समय-समय आदरणीय श्री बलवन्तसिंह जी मेहता रैनपुरी उदयपुर में प्रेरणा और शुभांश प्राप्त होते रहे हैं। अतः मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे हमेशा उनका स्नेह मिलता रहा है।

पुस्तक का आद्योपात्त आलोचन कर उग पर 'ग्रामुष्' लिख देने की कृपा प्रसिद्ध इतिहासविद परम सम्माननीय श्री डॉ. गङ्गीनाथ शर्मा ने की है। एतदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

सुर्याडिया विश्वविद्यालय उदयपुर के इतिहास विभाग के आचार्य श्री डा. बी. एस. माथुर साहय ने ग्रन्थ पर प्रावधान एवं श्री डॉ. लक्ष्मीनारायण जी नन्दवाना निदेशक राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर ने समीक्षात्मक लोकाद लिखकर महती कृपा की है। इसके लिए लेखक उनका आभारी है। आदरणीय श्रीमान पद्मवीसिंह जी मेहता ने कृपापूर्वक अपना सम्मति' लिखकर मुझे कृतार्थ किया है। उसका लिए मैं हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशन और मद्रक महादय को भी मैं साधुवाद देता हूँ जिनकी रुचि और परिश्रम से इसका प्रकाशन हुआ है।

उदयपुर

डा. राजेंद्रप्रकाश भटनागर

13 फरवरी, 1987

विषय-सूची

- 1 विषय प्रवेश पृष्ठ 1
- 2 भामाशाह का वंश और पिता भारमल्ल 3
 वंश पिता और माता भारमल्ल रणेभम्भोर की कित्तदारी, एक लाख का पट्टा और सामन्त का पद प्राप्त करना, घम प्रेम घनी अन्तिम दिन ।
- 3 भामाशाह 12
 जन्म और प्रारम्भिक जीवन विवाह हल्दीघाटा युद्ध प्रधान का पद प्राप्त होना, प्रजापालन एवं प्रबंध मालवा को लूटना, दिवर पर अधिकार, बादशाह के प्रलोभन को ठुकराना, चावड म नयी राजधानी कायम करना मथाड पर पुन अधिकार आर्थिक सहयोग अहमदाबाद अभियान, घम प्रेम उदार दानी निर्माण कार्य अन्तिम दिन और मृत्यु मूल्यांकन ।
- 4 ताराचन्द 43
 जन्म व बाल्यकाल हल्दीघाटी का युद्ध, गोडवाड का गवर्नर, मालव की लूट मालवे पर दूसरा अभियान घम प्रचार कला और साहित्य के प्रति अभिरुचि तारावावडी मय्यु और मूल्यांकन ।
- 5 भामाशाह के वंशज 54
 जीवाशाह— प्रधान पद पाना मय्य संचालन म सहयोग बादशाह जहागीर से भेंट ।
 अश्वराज कावडिया—परिवार राज्य सम्मान प्रधान का पद डूंगरपुर पर आक्रमण ।
 भामाशाह के परवर्ती वंशजों को राज्य सम्मान और जातीय सम्मान ।
- 6 भामाशाह की पुत्री 'जगीशा बाई' का वंश 63

1 पुगलेखीय और साहित्यिक प्रमाण संग्रह

- 1 ताम्रपत्र
- 2 शिलालेख
- 3 परवाना
- 4 पट्टावली
- 5 साहित्यिक ग्रंथ

2 इतिहासकारों और साहित्यकारों की दृष्टि में भामाशाह

3 सहायक ग्रंथ सूची

कुल पृष्ठ संख्या 16 + 104

संकेत - सूची

बी वि	— बीरबिनोद
राज का इति	— राजपूताना का इतिहास
उद का इति	— उदयपुर राज्य का इतिहास
एनल्स	— एनल्स एण्ड एंटीक्वीटिज ऑफ राजस्थान
रा प्रा वि प्र	— राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
Annals	— Annals and Antiquities of Rajasthan

1. विषय-प्रवेश

इतिहास का निर्माण महापुरुषों से होता है। महापुरुषों के व्यक्तित्व और कृतित्व न केवल समकालीन समाज, प्रदेश और राष्ट्र को अनुप्राणित करते हैं अपितु युग पथान प्रेरणा का स्रोत बने रहते हैं। समाज और राष्ट्र के विकास, समृद्धि और उन्नयन में ऐसे महापुरुषों के किसी न किसी रूप में योगदान की कदापि भूलाया नहीं जा सकता।

राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण तथ्य रहा है कि राजपूत सामक उत्तम कोटि के थोड़ा अवश्य थे परन्तु प्रायः अच्छे संगठनकर्ता और प्रणामक नहीं थे। राजपूत-इतिहास का पीछा मन्त्रिष्क मुख्यतया कायस्थों और वंशों तथा आशिक रूप से ब्राह्मणों द्वारा प्रदान किया गया।¹ राजस्थान का गौरवपूर्ण इतिहास अब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक ऐसे राजपूत-महान् व्यक्तियों के जीवन और श्रियाकथाओं को उजागर नहीं किया जाता। इनके संबंध में ज्ञान जो कि इनके पारिवारिक सग्रहों के अतिरिक्त राजकीय सग्रहों में उपलब्ध दस्तावेजों, किम्बदन्तियों, कथानों, ग्रंथों तथा तत्कालीन इतिहास ग्रंथों, प्रशस्तिपत्रों, दानपत्रों, स्तूप-शिलालेखों, खजूरों के माध्यम से की जानी चाहिए। राजपूत राज्यों का वास्तविक और व्यावहारिक रूप में प्रणामन इन राजपूत-महान् व्यक्तियों के हाथ में ही रहा। राजस्थान के इतिहास की महत्वपूर्ण परम्पराओं और कहियों का निर्माण ऐसे ही पुरुषों के द्वारा हुआ है इसमें दो राय नहीं। राजपूत राज्यों में प्रधान का सर्वोच्च पद मदव या तो किसी कायस्थ को अथवा

1 डॉ० बालिकारजन का नूतनो न उचित ही निष्ठा है —

'The Rajput was essentially a grabbing warrior, and no organizer or administrator. The brain behind the Rajput history was supplied mostly by the Kayastha and the Vaishya and partly by the Brahman. A history of Rajputana worthy of the name cannot be written till further researches are made into the family records of these non-Rajputs, who practically ruled the Rajput principalities and manned their whole civil administration. They have a legitimate share of the glory that history has hitherto assigned to the Rajput exclusively. (Studies in Rajput History P. 50)

किसी वैश्य को सौंपा जाता रहा। ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जिसमें किसी राजपूत को यह पद दिया गया हो। इसके अतिरिक्त राज्य के प्रशासनिक पदों 'वामदारों' के पदों पर भी वे लोग नियुक्त किये जाते रहे। इसके दो मुख्य कारण माने जा सकते हैं। कायस्थों और वैश्यों में यह गुण रहा है कि जब परिस्थिति उपस्थित हुई तब उन होने एक और थोड़ा का काय किया तो दूसरी ओर प्रशासन और कूटनीति संबंधी कार्यों का भी कुशलता से संपादन किया। इसके अतिरिक्त, किसी सैनिक अभियान में विभिन्न राजपूत कुलों और वंशों के लोग अपने शासकों को छोड़कर अन्य किसी शाखा के राजपूत सरदार की अधीनता में जाना पसंद नहीं करते थे, अपितु किसी राजपूतों के प्रधान के अधीन सैनिक अभियान में जाने से नहीं हिचकिचाते थे। इसलिए इन राजपूत राज्यों के सैनिक अभियानों का नेतृत्व (कमांडर इन चीफ) भी इन्हीं कायस्थों और वैश्यों ने ही समय समय पर किया। इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य की ओर विशेष ध्यान दिया जाकर इतिहास के इन विशिष्ट निर्माताओं के जीवन और कार्यों का प्रकाशन अब आवश्यक बन गया है। डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने उदयपुर राज्य के इतिहास में नर राजपूत घरानों और उनके द्वारा किये गये कार्यों का संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रकाशित किया है परंतु इस विवरण में कई वंशों की उपलब्धियों का वर्णन छूट गया है। जोधपुर, जयपुर और अन्य राजपूत राज्यों के कायस्थों, वंशों ब्राह्मणों चारणों भाटा आदि की इस प्रकार की सेवाओं की विवरण सम्बंधी सामग्री भी प्रचुर मिलती है।

ऐसे ही वैश्य महापुरुषों में भामाशाह का नाम अग्रतम है, जिसने मेवाड़ के दुर्दिनों में अपने धार्मिक, बौद्धिक और सैनिक योगदान द्वारा एक सबल का काय किया। इसलिये उसे मेवाड़ उद्धारक' (Mewar-Saviour) के रूप में स्मरण किया जाता है।

डॉ० बालिकारजन कानूनगो ने कहा है 'सम्पूर्ण राजपूताने में भामाशाह का नाम उतने ही प्रेम और सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है जिस प्रकार महाराणा प्रताप का।'¹

भामाशाह के चरित्र गुणों और कार्यों की विशेषताओं का वर्णन इतिहास का एक अविस्मरणीय पृष्ठ है। भामाशाह की भाति उनके भाई ताराचंद का मेवाड़ के प्रति योगदान भी प्रशंसनीय रहा है। वह बोर और उत्तम प्रशासक था।

1 "The name of Bhamashah is remembered throughout Rajputana with as tender affection and reverence as that of Maharana Pratap (Studies in Rajput History P 51)

2. भामाशाह का वंश और पिता-भारमल्ल

वंश

भामाशाह 'कावडिया' गोत्र का ओसवाल जैन वंश था। इसके पूर्वज दिल्ली के रहने वाले थे, वहाँ से चलकर ये कभी अलवर में आकर बस गये थे।¹ इनके पूर्वजों का विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता। यह वंश मूल में तोमर वंशी राजपूत था जिसने बाद में जैन धर्म अप्नीकार कर लिया था।²

पिता और माता

भामाशाह के पिता का नाम भारमल्ल और माता का नाम कपूरदेवी था जो नागेश गोत्र की थी। इनके दो पुत्र हुए—भामाशाह और ताराचंद। भामाशाह बड़ा और ताराचंद छोटा था।

- 1 सेवक जेठमल ने इससे पूर्वजा का वर्णन इस प्रकार दिया है—“भामाशाह का पड़ना चाँगा कावडिया जो राय की गोत्र ओसवाल दिल्ली का रहने वाला था, उसके बाप दादे बादशाह की खफगी के कारण लड़ाई में मारे गये थे, उस वंशत वह बच्चा ही था। इसीलिये उसको कावड में डालकर मेवाड़ लाये। इससे उसका और उसकी सन्तान का नाम कावडिया हो गया। चाँगा का बेटा ताड़ा और तीड़ा का भारमल्ल हुआ। ये लोग बादशाहों के यहाँ कोठारी और कामदार थे और उदयपुर में दीवान हुए गये थे। दीवान होने के पहिले भी इन लोगों के पास बहुत धन था। इसीसे ये शाह कहलाते थे।” (वारशासन, १६ दिसम्बर १९५२, पृ० ७)

डा० जगदीशचन्द्र जैन ने अपने शोधप्रबंध 'जैन ग्रन्थों साहित्य में भारतीय समाज' में जैन ग्रन्थों के हवाले से बताया है कि 'सोन के सिक्कों में दीनार ग्रन्थों केवडिक का उल्लेख है जिसका प्रचार पूर्व देश में था।' सम्भवत 'केवडिक' सिक्के के प्रचुर संग्रह के कारण भारमल्ल को पूर्वज 'कावडिया' या 'कावेडिया' कहलाये।

- 2 अजमेर के शासन पृथ्वीराज चौहान के दिल्ली पर शासन करने से पहले वहाँ तोमरवंश का राज्य था।

भारमल्ल

भारमल्ल भारी भरद्वा, राखी आन बल प्राण ।

मान बच्यो मेवाड को, राखा जाती शान ॥

(श्री बलब रसिंह महता)

रणथम्भोर की किलेदारी

मेवाड के प्रसिद्ध महाराणा सागा (सग्रामसिंह) १५२३ ई० में भारमल्ल को उसकी प्रशासनिक और सैनिक योग्यता देखकर अनवरत बुलाकर अथवा जब सागा मेवाड की ओर बढ़ा था तब अलवर में भारमल्ल को भी साथ लेकर आया और उसे रणथम्भोर का किलेदार नियुक्त किया था ।¹ रणथम्भोर उस समय मेवाड के अंतर्गत था । महाराणा सागा महाराणा ज्ञानो कमवती (कर्मवी) से विशेष प्रसन्न था। यह रानी राव नवर का पुत्री थी । इनसे सागा के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे — विक्रमादित्य और उदयसिंह । य उस समय बहुत छोटे थे । महाराणा सागा का ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंह था अतः रानी को भय था कि रत्नसिंह के गद्दी पर बैठने के बाद उसके दोनों पुत्रों को अच्छी जागीरी नहीं मिलेगी । इसलिये रानी ने आप्रह्वपूर्वक निवेदन कर महाराणा सागा से अपने दोनों पुत्रों को लिये रणथम्भोर की जागीरी प्राप्त कर लो चूँकि वे दोनों बालक थे जागीरी की सुरक्षा और देखभाल का कार्य महाराणा सागा के आदेश से रानी कमवती के चचेरे भाई हाडा सूरजमल (सूयमल्ल) को सौंपा गया । राव सूरजमल बूढ़ी का शासक और मेवाड का माउलत था । विक्रमादित्य और उदयसिंह अपनी माता कमवती हाडी के साथ रणथम्भोर के दुर्ग में रहने लगे ।

भारमल्ल लम्बे समय तक रणथम्भोर का किलेदार रहा । उसकी किलेदारी के समय में रणथम्भोर बाबत दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई ।

प्रथम घटना राणा रत्नसिंह के काल (फरवरी १५२८ ई० से १५३१ ई०) में हुई । खानवा के युद्ध के बाद कुछ दिनों से ही महाराणा सग्रामसिंह का देहान्त हो गया । उसका ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंह मेवाड की राजगद्दी पर बैठा । बाबर के विरुद्ध युद्ध में जाने से पूर्व ही रानी कमवती को विक्रमादित्य और उदयसिंह सहित रणथम्भोर भेजकर महाराणा सागा स्वयं आगे बढा था । राणा सागा की उपस्थिति में युवराज रत्नसिंह ने इस जागीरी को देने में सहमति अवश्य प्रकट की थी परंतु मन में वह इससे असंतुष्ट था । रणथम्भोर की जागीरी साठ

1 धीरविनोद, भाग २, पृ० २५२, डॉ० श्रीभा, राज० का इति० जिल्द, ३, पृ १३०२

लाख की थी। इनका उहा प्रदेश और उसके साथ इस प्रसिद्ध दुग का अपना छोटे भाई का अधिकार में रहना राणा रत्नसिंह को पसंद नहीं आया। इतनी बड़ी जागीरी के अलग होने से मवाद की शक्ति दुबल हो जाती।

अनएव महाराणा बनने पर रत्नसिंह ने कोठारिया के पूर्विया चौहान पूगमल्ल को राजमाना और दोना भाइयों को चित्तौड़ लाने के लिये भेजा। उस समय महाराणा सांगा द्वारा मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी से लिया हुआ जहाज ताज और कमरपटा भी रानी ने पूगमल्ल को नहीं लौटाया और चित्तौड़ लाने से यह कह कर टाल दिया कि हमारी देखभाल के लिये मूयमल्ल नियुक्त है, अब हमारा जाना न जाना उसके अधीन है। पूगमल्ल ने बूंदी जाकर राव मूयमल्ल से भी बातचीत की। उसने टांते हुए कहा कि वह सब बात चित्तौड़ आकर महाराणा से निवेदन करेगा। एसी ही एक घण्टा घटना और घटित हुई। राव मूयमल्ल समझ गया कि महाराणा रत्नसिंह उसके विरुद्ध हैं। उसी समय उसने बाबर से मिल करने की इच्छा जाहिर की। बाबर ने इसका दिवंगत अपना तुजुन ए बावरी में दिया है-

“ तारीख 18 मुहर्रम (हि० ९३५, मंगलवार = ३० सितम्बर १५२८ ई०) को राणा सांगा के दूसरे बेटे विश्वमादित्य की तरफ से, जो अपनी माँ पद्मावती १ के साथ रणथम्भौर के किले में रहता है आदमी आया। ग्वनियर की मदद खाना होने से पूर्व अशोक २ नाम के एक हिंदू ने, जो विश्वमादित्य का मित्र आदमी है, आकर ताजदारी और खिदमतगारी जाहिर की, और अपने कदम के लिए सत्तर लाख की जागीर मागकर ऐसा इकरार किया कि जब वह मृत्युमुखी का किला सौंप दे तो उसकी इच्छानुसार परगने दिए जाए। इस बात का जवाब कर के हमने रुखसत दी। इस मियाद से कुछ ज्यादा दिन लग गए। यह आदमी हिंदू विश्वमादित्य की मा पद्मावती का नजदीकी मित्र था हुआ है। उसने यह हाल मा बेटा से जाहिर कर दिया है। उहाल भी आगे से मृत्युमुखी के लिए खवाही और खिदमतगारी कबूल कर ली है। एक ताज और जरी का पटका दा। जब सांगा ने सुल्तान महमूद को जेर किया तो वह मृत्युमुखी के किले में आया, तब वह ताज और जरी का पटका जो तारीफ के लिये था, मृत्युमुखी के छोड़ दिया वहीं ताज और जरी का पटका विश्वमादित्य के पास आया। उसने वह भाई रतनसी (रत्नसिंह) ने जो बाप की जगह राजा के किले पर बसवा रखता है ताज और जरी का पटका अपने छोटे भाई के पास दा। उसने कहा

- 1 बाबर ने भूल से कमवती के स्थान पर 'पद्मावती' लिखा है।
- 2 यह परमार वंश का और बिजोलिया वानों का किल्ला है।

दिया इन भादमिया के साथ जा आवे हैं, गान और जरी का पटना मुने देना कहलाया है। रणधम्भोर के बन्ने बयाना मांगा था। बयान की बात से उनको टालकर रणधम्भोर के एवज में शमशावा देने का पाना बिया गया। उसा दिन इनके साथ हुए भादमियो को बिलगत पहना कर नौ दिन की मियाद से बयाने माने की रससत दी।”

फिर, बाबर ने पुन लिखा है- “तारिख ५ सफर (२१ अक्टूबर) सामवार के दिन विजयनादित्य के भ्रातृ एलची और पिछा एलची के साथ पुराने हिन्दुओं में से देवा का बेटा बेहरा होसी भेजा गया, कि यह रणधम्भार सींगने, विजय गारी कबूल करने और बर्ताव के लिए शत कर। यह हमारा जो भ्रातृ भेजा है, दखकर, समझकर, यकीन करके आवे और वह अपनी बातों पर जमा रहे मने भी वादा किया, खुदा पूरा करे - उसके बाप का यह कह राणा करके चित्तोड में बठा दूंगा।” १

मेवाड़ के महाराणा रत्नसिंह और बूंदी के राव हाडा सूरजमल के बीच मत-मुटाव हो गया था। बूंदी हाडा चौहाना का स्वतंत्र राज्य होने पर भी मेवाड़ के अधीन था। अतः बूंदी के राव को मेवाड़ के महाराणा के आदेशों की पालना करनी होती थी और महाराणा के राजदरबार में उपस्थित होकर रस्म अदा करनी होती थी। रणधम्भोर की देखभाल और सुरक्षा का जिम्मा भी अक्सर मेवाड़ वालों की ओर से बूंदी के राव को सौंपा जाता रहा। सूरजमल बाबर जैसे मेवाड़ के बड़े शत्रु से मिलकर बूंदी को स्वतंत्र कराना चाहता था। वीरबिनोदकार ने लिखा है कि सूरजमल हाडा राणा रत्नसिंह को इस कायवाही द्वारा भयभीत करना चाहता था। परंतु यह कथन सचपा सत्य नहीं है। बूंदी की स्वतंत्रता के साथ हाडा सूरजमल बाबर की मदद से अपने भानजे विजयनादित्य को मेवाड़ का राणा बनाना चाहता था, एवं रत्नसिंह को अपदस्थ करना चाहता था। इस बारे में उसने अपनी बहिन रानी कर्मावती के साथ भी सलाह की थी। वह भी चाहती कि उसका बड़ा बेटा विजयनादित्य मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। अथवा मेवाड़ से रणधम्भोर स्वतंत्र राज्य बन जाये जिसके लिए मेवाड़ के महाराणा के साथ संधि होना अनिवार्य था इस संधि में सफलता पाने के लिए बाबर जैसे शक्तिशाली शासक का सहयोग अथेक्षित था।

इसलिए १५२८ ई० से पूर्व ही उसने मुगल बादशाह बाबर के बड़े पुत्र हुमायूँ

1 वीरबिनोद, भाग २, पृ ५-६ पर उद्धृत।

को राखी भिन्नवायी, यह बात राजस्थान में प्रसिद्ध है । ¹

इस कायवाही से मेवाड़ की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती, घोर बूंदी का राज्य मेवाड़ से स्वतंत्र हो जाता । इस पंडित की सूचना मिलने पर महाराणा रत्न-सिंह को हाडा सूरजमल के विरुद्ध क्रोध आना स्वाभाविक था । हाडा राव मेवाड़ की स्वाधीनता को इस समय धूल में मिलाना चाहता था । हाडा सूरजमल की यह कायवाही कभी सराही नहीं जा सकती ।

एक शिकार के बहाने महाराणा रत्नसिंह राव सूरजमल को बाहर ले गया । वहां मौका पकड़कर दोनों ने एक दूसरे पर चार क्रिये तब दोनों की ही वही मृत्यु हो गयी । इसके बाद सरदारों ने रणथंभोर से ब्रुलवा कर चित्तौड़ की गद्दी पर विक्रमादित्य को बिठा लिया । उसने अपने मामा सूरजमल के पुत्र सुर्तान (मुल्तान सिंह) जो उस समय आठ वर्ष की उम्र का था को १५३१ ई० में बूंदी की गद्दी पर बठाया । वह दुष्ट प्रकृति का था और उसके व्यवहार से भय हाडा सरदार नाराज होकर अपने ठिकाना में चले गए । ²

इसके बाद विक्रमादित्य ने राणा बनने पर हुमायूँ को पत्र लिखकर उसकी अधीन-ता प्रकट की तथा उससे गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के विरुद्ध सहायता की भाग की थी । ³ मेवाड़ के अनेक सरदार विक्रमादित्य के दुःखवहार व ऐसे ही कामों

1 बीरबिनोद भाग २ पृ ४ कर्मावती ने पद्माशाह के माफन हुमायूँ को राखी भेजी (मेवाड़ मुगल संबंध पृ ३६) । पद्माशाह भाट था जो बूंदी की आर से भेजा गया था । डूगरसिंह को मेवाड़ की ओर से भेजा गया था जो विक्रमादित्य का भाई लगता था । इस घटना का उल्लेख 'रावल राणारी बात में इस प्रकार किया है -

" स १५८० राणो सागोजी बहुण्ठ पधार्या । कालपी रे डेरे जेहेर हुमा । प्रमार करमचंद रतनसीधजी कीधो । पाट रतनसीधजी ने बैठाया । भाई विक्रमा-दित्य जी ने परा काडया । हाडी करमती राव नारायणजी रो बेटी उदेसिधजी रा भ्रम था बूंदी गया छ महेन भ्रम है । चौथे महिने बूंदी में उदयसिध रो जनम हुआ । भाट पदमसाह जह राखीरो बहानो करन दली हुमाऊ पतीसाह नखे मोकरया । हजूर पोहाता राखी बागद नजर कीदो । पातसाह कही सी काचली बहीन मागे जदी तयारी है या कहै भाट ने सीख दीदी । या रतनसीधजी सामलन राव सुरज मल उपर प्रस राखी । (रावल राणारी बात पृ ८१ अ ब)

2 बीरबिनोद, भाग २, पृ ७-८, २६, ६९

3 डा० एस०बी०पी० निगम ने 'शेरशाह सूरी' के प्रकरण में फारसी इतिहास को उद्धृत करते हुए लिखा है इसी बीच राना प्रताप(?) ने हुमायूँ बादशाह को

के कारण उसके विरुद्ध हो चुके थे। तुजुकेवावरी व उपयुक्त विचार से जाना होता है कि बाबर के पास रानी कर्मावती और हाडा सूरजमल द्वारा भेजे गये अशोक परमार आदि प्रमुख सरदार दो त्वार गये थे। बाबर ने मवाड को अधीन करने का यह मौका देखा। उसने भी विजयनाटिका को मेवाड़ की गद्दी पर बैटाने का वादा किया था परंतु रणथम्भोर के बजाय बयाने की जागारी देने का वह स्विकार नहीं की। वह रणथम्भोर की जायिया पहले प्राप्त करना चाहता था और यह बात उसने दूता के साथ की गई बातचीत में जाहिर भी कर दी थी। बाबर बयाने के बजाय शम्साबाद देना चाहता था। परंतु परिस्थितियों को देखने से जात होता है कि न तो बाबर को रणथम्भोर सौंपा जा सका और न विजयनाटिका को अथवा जागीरी मिली।

भरे विचार से रणथम्भोर मुगलों को न दिये जाने में वरना किनदार भाग्यमत्त ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। भारतन न रानी कर्मावती को इस अन्तर्वासदनी की कायवाही के दूरगामी परिणामों से अवगत कराया होगा। रानी के पति राणा सागा की नीति में बाबर एक विदेशी आक्रांता था और वह उस दश में से निकाल मार भगाना चाहता था। स्वामिभक्त भारतन ने रणथम्भोर किले की जावियां देने से भी इन्कार किया हो। मवाड की स्वाधीनता नष्ट हो जाती। इसीसे बाबर के चाहने पर भी रणथम्भोर उस नहीं सौंपा गया।

बीरबिनोद में लिखा है कि -

“भामाशाह के बाप भाग्यमत्त को महाराणा सागा ने रणथम्भोर की किलेदारी दी थी, जो पीछे सूरजमल हाडा बूढ़ीवाले को मिली इस पर भी किसे रणथम्भोर कि ऐतिवारी नौकरी और कुल कारबार भारतन के ही हाथ रहा था।”¹ अतः रणथम्भोर किला मुगलों को सौंपने नहीं देने के पीछे भारतन की भूमिका से नकारा नहीं जा सकता।

दूसरी घटना महाराणा उदयसिंह के बाल की है। बीरबिनोद में लिखा है कि एक बार शेरशाह सूरी (१५३०-१५४५ई) ने रणथम्भोर पर चढ़ाई की तब भारतन ने कुछ पेशकश (नजराना) देकर चढ़ाई रद्द करा दी।² फारसी इतिहास-ग्रंथों से जात होता है कि १५४२ ई० में ग्वातिघर और मालवा की विजय करने के उपरांत लौटते समय शेरशाह ने रणथम्भोर का घेर लिया। तब वहा एक प्रार्थना पत्र लिखा कि मैं दिल्ली के अधीन हूँ तथा मुलतान बहादुर गुजराती भरे साथ घायाब कर रहा है बादशाह मेरी स्थिति की ओर ध्यान दें। (पृष्ठ ११६)

1 बीरबिनोद भाग 2 पृ २५२

2 बीरबिनोद, भाग २ पृ ६९

के हाकिम ने दुग को शेरशाह को सौंप दिया। शेरशाह ने वहाँ अपने बड़े पुत्र आदिलशाह को हाकिम नियुक्त किया। वह वहाँ अधिक समय तक ठिक नहीं सका और अपने भाई जलाल खाँ, जो शेरशाहमुर की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा था, के साथ की लड़ाई में हारकर भीम हो पटना की ओर भाग गया।¹

इस समय किले की किलदारी पूरवत् भारमल्ल के पास ही रही। वह तब तक वहाँ किलेदार बना रहा जब महाराणा उदयसिंह ने राव मुजन हाडा को १५५४ ई० में रणथम्भोर की किलेदारी सौंप दी।² भारमल्ल सदा मेवाड़ के प्रति स्वामिभक्त और देशभक्त बना रहा।

सुतान (मुस्तानासिंह) के दुष्यवहार के कारण महाराणा उदयसिंह ने पून्नी का पट्टा और रणथम्भोर की किलेदारी मुजन हाडा को १५५४ ई० में सौंप दी। उसे राजतिलक वर सम्महित बूंदी की ओर खाना किया। मुस्तानसिंह बून्दी से भागकर पाटन होता हुआ रामल्ल खींची के पास गया, वह (खींची) महाराणा का बड़ा सरदार था। उसने महाराणा से निवेदन कर सुतानसिंह को बडाद का प्रदेश मिला दिया। बून्दी पर अधिकार करके राव मुजन रणथम्भोर की ओर बढ़ा। इस समय (१५५४ ई०) महाराणा उदयसिंह ने भारमल्ल को उसके परिवार-सहित चित्तौड़ दुग में बुला लिया। भारमल्ल की किलदारी की निरंतरता के कारण ही सूरवण के अधीन होने पर भी रणथम्भोर को मेवाड़ का महाराणा अपने अधीन ही मानता था।

राव मुजन हाडा के पास रणथम्भोर का दुग १५६८ ई० में अक्टूबर की अघोषिता स्वीकार करने पय न रहा। बिना संधि किये रणथम्भोर जैसे दुग को सौंप देने की मुगल बादशाह अकबर ने अनुचित माना और मुजन की मूर्ति कुत्ते के रूप में बनाकर आगरे के किले में लगवा दी थी।

१ आमेर शासक भटार में इस समय रणथम्भोर में गिरी गई कुछ पुस्तकों की पाण्डलिपियाँ उपलब्ध हैं जिनमें यहाँ के शासक का नाम खिखड़ा दिया है (देखें - 'राजस्थान के जन भण्डारा की सूची,' भाग ३ पृ० ७३)। यह सम्भवतः मूल शासक द्वारा नियुक्त यहाँ कोई अधिकारी रहा होगा।

२ रामवल्लभ सोमानी का मत है कि - "Bharmal was a Kildar of Ranathambhor during the time of Sanga and moved to Chitor on its fall at the hands of Sher Shah Sur" ('Jain Inscriptions of Rajasthan' P 233)

एक लाख का पट्टा और सामंत का पद प्राप्त करना -

भारमल्ल ने अपनी दीपकालीन निरक्षारी का अधिम वक्ष्यपगणयता, निष्ठा वफादारी, कूटनीतिज्ञता और प्रशासन कृतज्ञता का अच्छा परिचय दिया था। इसी कारण प्रसन्न होकर वि.सं. १६१० (१५५३ ई०) में महाराणा उदयसिंह ने भारमल्ल का एक लाख का पट्टा दकर अपना सामंत बनाया था।¹ मवाड के मामलों में यह एक बड़ा बड़ी जागरी थी। बाबर और ग़रनाह के मामलों में भारमल्ल ने रणथम्भोर की ज़िलेदारी के समय जो देगमन्ति और स्वामिभक्ति प्रदर्शित की थी उसी से प्रभावित होकर उसे इतनी बड़ी जागीरी का पट्टा दिया गया था। अन्य कारण भी थे। भारमल्ल ने महाराणा उदयसिंह के वात्सल्य में रणथम्भोर में उनकी मुराबत दफ्तार की थी, जिसका जिम्मा राणा सागा ने उसे (भारमल्ल) को सौंपा था। इसके अतिरिक्त भारमल्ल स्वयं बहुत अधिक धनी, वीर और योग्य प्रशासक था। मवाड में वह तब तक पर्याप्त प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर चुका था।

ग़ाह भारमल्ल के चित्तौड़-निवासकाल के मुझे दो ताम्रपत्र देखने की मिला जिनमें उसका उल्लेख है। एक-सबत १६१५ माघवती १५ और दूसरा सबत १६२२ माघशीष शुक्ल १५ का है।²

एक पुरानी बहरी में इस तथ्य का भी उल्लेख मिलता है कि ग्रामिण निजामी ब्राह्मण गौतमा के पास रुपये उधार लेने के लिए महाराणा उदयसिंह ने जिन सागा को भेजा था उनमें भारमल्ल प्रमुख था।³

घम प्रेम -

जता कि पूर्व में कहा जा चुका है, भारमल्ल छोसवाल जन था। अपने जीवन

- 1 वीरविनाद, भाग २, पृ. ६८ तथा पृ. २५२। पृ. ६८ पर कनिराज श्यामल दास ने भूलसे लिख दिया है कि- 'वि.सं. १६१० (१५५३ ई०) में महाराणा उदयसिंह ने भामाशाह के बाप भारमल्ल को अलवर से बुलाकर एक लाख का पट्टा बट्टाया था।' भारमल्ल को महाराणा उदयसिंह ने नहीं, अपितु उसके पिता महाराणा सप्रामसिंह ने अलवर से बुलाकर रणथम्भोर में ज़िलेदार नियुक्त किया था, 'वीरविनाद' भाग २, पृ. २५० पर भी यह बात लिखी गई है। एक ही ग्रंथ में भूल से ये दो विरोधाभासी वचन लिख दिये हैं। यहाँ केवल यही अभिप्रेत है कि महाराणा उदयसिंह ने सम्मानपूर्वक भारमल्ल को एक लाख का पट्टा दिया था।
- 2 ताम्रपत्रों की प्रतिलिपियाँ परिशिष्ट में दिये।
- 3 पुराहित संग्रह बही संख्या ५, वि.सं. १७६४-८१, पृष्ठ १६४,

जान क प्रारम्भिक भाग में वह तुषारच्छद का अनुयायी रहा, परन्तु बाद में
 धनागर सूरी के उपरान्त से प्रभावित होकर 'भारत' और उनके साथ धनरा
 नाम गोरी तुषारच्छद के अनुयायी बन गये। इस समय का प्रमाण
 नाम गोरी तुषारच्छद की एक पट्टाबला में मिलता है। इस पट्टाबला में
 'म' लक्ष का भी प्रमाण मिलता है जिसका १६१६ में चितौड़ पर भारमल
 निवास करता था। साथ ही, यह भी जान होता है कि राजपूतों का यहाँ
 स्त होना पर भी भारमल व्यक्तिगत जीवन में प्रभावित नहीं रहा।

धनी -

तुषारच्छद पट्टाबला में बताया है कि भारमल अठारह बरस का सम्पत्ति वाला
 था। इससे जान होता है कि वह अपने समय का एक बहुत बड़ा धनी व्यक्ति था।
 अन्तिम दिन -

भारमल ने अन्तिम दिन पूरे आराम से व्यतीत किये। वह मनाड के बहुत
 उच्चपद पर धामीन था। उसकी हजली चितौड़ दुर्ग पर मेगवान (ताम्रगाने)
 के सामने बरबाद के मरान के पश्चिमी किनारे पर था जिसकी महाराणा
 सज्जनसिंह ने कबायल का मरान तयार कराते समय तुड़वा दिया था। यह
 हजली बाद में 'भामाशाह की हजली' के नाम से प्रसिद्ध रही। चितौड़गढ़ की
 तलहटी में पाउने पाते के पास भारमल की हस्तिशाला थी। वह भी बाद में
 'भामाशाह की हस्तिशाला' कहलाई।

इस प्रकार महाराणा उदयसिंह के पान में भारमल को उच्च प्रतिष्ठा और
 स्थान प्राप्त हो चुका था। यह महाराणा के परम विश्वसनीय व्यक्तियों में से
 था। माघशीव सं १६२४ (अक्टूबर १५६७-७०) में चितौड़गढ़ पर मुगल बाग्याह
 अक्टूबर का आक्रमण हुआ। परा डालने में पूरे अपने सरदारों के साथ ही और
 सनाह पर महाराणा उदयसिंह परिवार सहित चितौड़ से कुम्भलगढ़ चला गया
 था। सब सामानों ने अपने पुत्रों का भी महाराणा के साथ भेज दिया था। भार-
 मल के दोनो पुत्र भी इस समय महाराणा के साथ गढ़ाड के पहाड़ी क्षेत्र में चले
 गये थे। स्वयं भारमल चितौड़ दुर्ग की रक्षा करते हुए अक्टूबर की रक्षा के साथ
 लड़ता हुआ काम आया था।



3. भामाशाह

सवस्व स्वस्नेहनसा पूरित कर पातल को ।

भामे प्रज्वलित कियो भारत के प्रदीप को ॥

(श्री बलवन्तसिंह महता)

जन्म और प्रारम्भिक जीवन

भामाशाह ने वंश परिवार और गुरु का परिचय उनके समकालीन रचित निम्न दो काव्या में मिलता है-

1. 'विदुर' कविद्वृत 'भामावावनी' की रचना (रचनाकाल स १६४६) संभवतः भामाशाह के आश्रय में हुई थी। इसके प्रारम्भ में वंश परिचय इस प्रकार दिया है -

' नमल गच्छ नागोरि नानि देपाल जिसा गुर ।
दया धम्म दाखिये , देव चउवीस तीयकर ॥
पिरियावटि पृथिराज साह भारमल्ल सुणिज्जे ।
जमवत बाधव जोड , करण कलीयण कहिज्जइ ॥
ताराचद लखमण राम जिम पित थोभण जोडी थयो ।
कुलतिलक भ्रमण कावेडिया, भामो उजवालण भयो ॥२॥
मूल पड भारमल्ल साख कावडिया मोहइ ।
पुत्र-पौत्र परिवार, मउरि मभण दति मोहइ ॥
लखमी नित लखगुणी पालत्या सुइज फूल फल ।
विस्तरियो घणउ चिहु खड विचइ, जुगि आलखणि एहान ॥
कलिकाल इयइ पीथल कुलइ, भामउ कलपत्तइ भवण ॥३॥

इससे ज्ञात होता है कि भामाशाह का कुल कावेडिया कहलाता था, इस कुल के मूल पुरुष का नाम 'पृथ्वीराज' था। इस कुल में उत्पन्न भारमल्ल कलि युग में करण के समान दानी था। इसका छोटा भाई जमवत था। भारमल्ल के दो पुत्र हुए भामाशाह और ताराचद। ये दोनों भाई राम लक्ष्मण की जोड़ी के समान थे। भारमल्ल वृक्ष का मूल था और पुत्र पौत्रों के रूप में उसका परिवार शाखाएँ थीं। नागपुरीय (लु कागच्छ) के देपाल (देपागर) उनके गुरु थे। इस वंश में भामाशाह कल्पतरु के समान हुआ।

2 कवि हेमरतन कृत 'गोरा बागल पद्मिनी क्या चौपाई' की रचना (रचना-काल स 1645) सादडी में ताराचन्द के आश्रय में हुई थी । इसकी प्रशस्ति में लिखा है-

“सबत सोलहसई परणाल
सावण सुनि पचम सुविशाल ।
पुहवी पोठि धनु परगडो,
सबलपुरी सोहद सादडी ॥
प्रथवी प्रगट राण प्रताप,
प्रतपइ दिन निन अधिन प्रताप ।
उस मत्री सन्बुद्धि निधान,
कावेडिया कुलतिलकनिधान ॥
सामि घरमि घुरि भामु साह
वदरी वस विधुसण राह ।
तस लघुभाई ताराचन्द,
अवनि जाणि अवतरियो इ द ॥
घूप जिमि अविचल पाल घरा,
सनु सह कीधा पाघरा ।
तस आदेस लहि, सुभ भाई
सभा सहित पायो सुपसाई ॥
वात रची ए बादिल तणी,
सामि घरमि ए मोहामणि ।”

भामाशाह का भाई ताराचन्द उससे छोटा था ।

भामाशाह का जन्म आषाढ शुक्ला १०, संवत् १६०४ (२८ जून १५४७ ई) को हुआ था । इस प्रकार भामाशाह राणा प्रताप (जन्म ज्येष्ठ सुदि ३, स० १५९७-९ मई १५४० ई०) से सात वर्ष छोटा था । इसका बाल्यकाल चित्तौड़-गढ़ में व्यतीत हुआ । यही उसने छुड़सत्रारी करना, अस्त्र चलाना आदि का ज्ञान प्राप्त किया । भामाशाह के प्रारम्भिक जीवन का विशेष वृत्तांत प्राप्त नहीं होता ।

वहा जाता है कि भामाशाह चित्तौड़ दुर्ग के नीचे पाहनपोल के पास बनी हुई अपनी हस्तिशाला में निवास करता था । महाराणा उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र प्रताप भी दुर्ग की तलहटी में रहता था । महाराणा उदयसिंह का रानी भटियानी पर अधिक प्रेम था । छोटा होने पर भी इस रानी के पुत्र जगमाल को युवराज

वनाया गया था। प्रताप जानता था कि उस राजगद्दी नहीं दी जायगी। उस समय प्रताप की निर्वाह हेतु प्रतिदिन दुग से उसके पास पेटिया भजा जाता था। उस पेटिये से वह दस-पन्निशा की रसोई बनवाकर प्रनिजिन दस राजपूतों के साथ एक पक्ति में बैठकर भोजन करता था जो बाद में मेवाड़ की एक रीति बन गई। इसीकाल में भामाशाह, जो दुग की तलहटी में रहता था प्रताप के निकट सम्पर्क में रहा। उनकी मित्रता जिना दिन गाढ़ होती गई। भारमल्ल की मृत्यु के बाद महाराणा उदयसिंह ने उसके एक नाथ के पत्रों का हकदार भामाशाह को वनाया था।

महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद जब प्रताप को गद्दी पर बैठाने का प्रश्न उपस्थित हुआ तब भामाशाह जो एक बड़े जागीरी का सामंत था ने प्रताप का पक्ष लिया और उस मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठाने में योगदान किया। प्रताप के साथ अपनी मित्रता को उसने आज्ञावन निभाया और स्वामिभक्त प्रमाणित हुआ।

विवाह

लुकाकच्छ की पट्टावली से विदित होता है कि भामाशाह का विवाह भोमा (भामा) नाहटा की पुत्री के साथ हुआ था। पट्टावली में यह भी बताया है कि भोमा के पास दक्षिणावत शख था जिसके प्रभाव में उसके घर में अठारह करोड़ का धनराशि उत्पन्न हो गयी थी। शखदय ने भामा को स्वप्न में दर्शन कर कहा कि तुम्हारे घर में पुत्री का जन्म होगा वह अपने पुण्य के प्रभाव में भारमल्ल कावेडिया के घर में जाही जायगी मैं भी उसके साथ उसके घर जाऊंगा। तब अपनी भावी पुत्री का विवाह सम्बंध भारमल्ल कावेडिया के पुत्र भामाशाह के साथ करने के निमित्त श्रोफन (नारियन) के स्थान पर उसे दक्षिणावत शख की कीमती वस्त्र से ढक कर भामा नाहटा ने भारमल्ल का दे दिया। उस सम्मानपूर्वक घर में ले जाकर भारमल्ल ने चन्दन की बीजा पर रखकर उसकी पूजा की जिसमें उसने घर में भी अठारह करोड़ की धनराशि उत्पन्न हो गई। कहने का तात्पर्य यह कि भारमल्ल का भामाशाह के विवाह के उपलक्ष में विपुल धनराशि प्राप्त हुई थी अथवा भामाशाह के विवाह के बाद भारमल्ल के घर में लक्ष्मी का वास हो गया।

हल्दीघाटी युद्ध

मेवाड़ के इतिहास में भामाशाह का नाम सबसे प्रथम हल्दीघाटी युद्ध के प्रसंग में सामने आता है।

१५७२ ई० में महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद प्रताप मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठा। उस अपने जीवन के अन्तिम काल (१५९७ ई०) तक मुगलों के साथ संघर्ष करना पड़ा। मुगल विद्वानों ने, अतः प्रताप की विदेशी शासनसत्ता

वर्तई पसन्द न थी। महाराणा प्रताप की स्वाधीनतावादी नीति और मुगल बाद-शाह अकबर की विस्तारवादी साम्राज्यवादी नीति के बीच सघर्ष अवश्यम्भावी था। अकबर चाहता था कि राजस्थान के अन्य राजपूत राजाओं की तरह राणा प्रताप भी बिना प्रतिरोध किये उसकी प्रभुता मान ले। एतदर्थ उसने साम-दाम-दण्ड भेद की नीति का अनुसरण किया।¹

प्रारम्भ में चार वर्ष तक अकबर ने अपने प्रमुख सरदारों और मंत्रियों को प्रताप का समझाने बुलाने के लिए मखाड भेजा। इस क्रम में जलालखा कोरची, मानसिंह, राजा भगवतदास राजा टोडरमलन के नेतृत्व में चार दूत-मण्डल भेजे गये।² परंतु उनके द्वारा लिया गया प्रलोभन और भविष्य में सुख समृद्धि की आशा प्रताप को आकर्षित नहीं कर सकी। राजा मानसिंह के साथ भेंट वार्ता के अवसर पर प्रताप ने उस उत्सवकार की पाल पर प्रीतिभोज दिया। इस आयोजन की व्यवस्था का भार भामाशाह को सौंपा गया होगा। भोजन के समय स्वयं महाराणा प्रताप उपस्थित नहीं हुआ और सुवराज ममरसिंह को भेज दिया। कुंवर मानसिंह की भुआ का विवाह मकर जस विदेशी म्लेच्छ के साथ हुआ था। इस प्रताप और उसके सहयोगी बिल्कुल अच्छा नहीं मानते थे। अतः प्रताप जस बुलामिमानी व्यक्ति के लिए यह शोभनीय नहीं था कि वह मानसिंह के साथ एक पक्ष में बैठकर भोजन करें। प्रताप ने पैट दद का बहाना बनाकर भोजन में सम्मिलित होने के लिए आन सकार कर लिया। साथ ही भोजन समाप्ति के बाद उस स्थान पर खूबाकर गगाजन छिन्नवाया उसकी शुद्धि करवाई। वाम घाते पथों को तालाब में विकारा दिया - इन बातों की खबर मानसिंह के पास पहुँचे बिना नहीं रह सकी। इससे मानसिंह ने अपने को अग्रमानित अनुभव किया और वह क्रुद्ध होकर अकबर के पास पहुँचा। मुगल के प्रतिम

1. कुम्भा द्वारा 'हिंदुसुरनाग' की उपाधि धारण की गई थी, जिसे गुजरात मालवा और दिल्ली के बादशाहों ने भी स्थाकार किया था। 'हिंदुसुरनाग' का ही रूप बाद में 'हिंदुआ सूरज' हो गया। इस प्रकार सूरजराज के समस्त हिंदुओं (भारतीयों) की राजभक्ति का प्रतीक मेवाड बना आ रहा था। एक ही दश में दो संप्रभुशासक नहीं हो सकते थे। जब तक मेवाड के शासक द्वारा मुगल बादशाह को शासक नहीं माना जाता, तब तक वह भारतवर्षका संप्रभुशासन नहीं बन सकता था। इसी कारण मुगल घेरे में बने हुए अधिकांश राजपूत और हिंदू शासकों की आंतरिक सहानुभूति मेवाड के शासक महाराणा प्रताप के प्रति थी। मेवाड का मुगलों के साथ सघर्ष हान में यहां भूत आधार था।

2. डॉ० आनीबेदीलाल श्रीवास्तव 'अकबर महारू' भाग १, पृ. १०६-१०७

हल्दीघाटी का युद्ध मेवाड़ के इतिहासों में 'खमनौर का युद्ध' नाम से मिथ्य रहा है। इस युद्ध में तब रणराज और उसके तीन पुत्र (शालिवाहन मानसिंह या भवानीसिंह और प्रतापसिंह), भाला बीदा, भाला मानसिंह रावन नेतृत्वा में (सारंगदेवों), राठोड़ रामदास (जयमल का पुत्र) डोडिया भीमसिंह, राठोड़ शंकरदास आदि कई प्रमुख सरदार मारे गये।

हल्दीघाटी युद्ध में से प्रताप के निकलकर चल जान को लेकर मुगल पक्ष ने इसे अपनी विजय बताया, पर तु वास्तविक विजयधी प्रताप को प्राप्त हुई। वह न तो पकड़ा जा सका और न मुगल मेवाड़ पर अपना स्थायी आधिपत्य जमा सके। यह युद्ध राणा प्रताप द्वारा चलायी गई गुरिल्ला युद्ध की रणनीति का एक अंग था। अतः इस युद्ध से भागने या वहाँ पर हार या जीत होने का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। युद्ध के प्रभाव, व्याप्ति और दीर्घकालीन संघर्ष की शुरुआत को देखते हुए इसमें प्रताप की सफलता मानी जानी चाहिए।¹

Exalted Imperialists in the confusion the hope of Mewar himself was all but surrounded by the enemy and about to be cut off. But it was not to be so long as there remained a single Rajput true to his chieftain. Realizing the crisis Bida Zala promptly snatched away royal umbrella from above the head of Rana and rushed forward with it shouting that he himself was Maharana Pratap. Defying the imperialists to face him the ruse succeeded.

The Mughal captains each eager to win the owner of being the Maharana's captor crowded round Bida.

The pressure on Pratapsingh was realised and his faithful adherents seizing his bridle turned his horse head and laid their wounded chieftain out of safety through the pass in the Rear.

Bida made death he coveted. With his fall struggle ended. The remained Mewar army dissolved and fled through the pass.

(' Military History of India ')

१ मेजर अल्फ्रेड नेविश ने युद्ध-परिणाम की समीक्षा करते हुए उचित ही लिखा है

' The Mughals won the victory but achieved nothing and '

कनलटाड ने हल्दीघाटी की मेवाड की 'धर्मोपीली' कहकर इस युद्ध के सम्मान को विश्वविख्यात किया।¹

हल्दीघाटी के युद्ध की 'जनयुद्ध' की संज्ञा दी जाती है यह उचित ही है। इस युद्ध में न केवल शासकवर्ग ने विदेशी शासकता के विरुद्ध हथियार उठाये अपितु सत्कालीन मेवाड के हर वर्ग के जन समुदाय ने इसमें सक्रिय सहयोग देकर देश प्रेम और राष्ट्रमर्ति का परिचय दिया था। 'सी से हमारे 'स्वाधीनता-
 L आन्दोलन का यह प्रतीक और आदर्श बन गया। इस युद्ध में राजपूत जाति के लगभग सब वर्गों, जैसे चूण्डावत, मिसोदिये, भाला, राठीड, तवर (तोमर), डोडिय, चौहान, पट्टहार (पतिहार) ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त बापस्थ, ब्राह्मण, वश्य, चारण, वारहट भी इसमें सम्मिलित थे। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि मुगलों से लड़ने के लिए मेवाड के छत्र के नीचे हकिमखा मूर अपनी पठानी सेना के साथ शामिल हुआ था जिसे राणा प्रताप ने सम्मानपूर्वक अपनी सम्पूर्ण सेना के हरावल का नतुंग सौंपा था। पठानों का मूल प्रदक्ष प्रारम्भ से भारत ही का अंग रहा है। अतः पठान अपने को इसी देश का निवासी मानते थे। यह इतिहासकारों का महान् भूल रही है कि उन्होंने पठानों को विदेशी मान लिया। पठान भी अथर्व स्वदेशियों की भाँति मुगलों को विदेशी मानते थे। इसी कारण मेवाड के अधीन मुगलों के विरुद्ध लड़ने में पठानों ने सक्रोच नहीं किया। राणा प्रताप की राष्ट्रीय जनवादी नीति के फलस्वरूप ही यह संभव हो सका। इससे भी बल्कर एक और तथ्य उभरकर सामने आता है वह यह कि हल्दीघाटी के युद्ध में मेरपुर का राणा प्रताप अपनी ससज्जत भील सेना के साथ इसमें उपस्थित हुआ था। यह इतिहास में प्रथम अवसर था जब भीलों ने राजपूत सना का सहयोग किया था। भीलों के तीरों की बौद्धार ने मानसिंह और उनके सेनानायकों को युद्ध की समाप्ति के उपरांत भी भागे बचने से रोका और वह वापिस लौटते हुए राणा व उसकी सेना का पीछा करने का सहास नहीं कर सका। इस प्रकार हल्दीघाटी का युद्ध सर्वतोभावेन जनयुद्ध कहा जाने योग्य है।

" long remembered the battle for many years afterwards in Delhi. Horryheaded Mughal warriors would passed the nights relating the youthful soldiers the tales of Haldighatti and amazing deeds of Maharana Pratap " (Major Alfred David Indian Art of war I 32)

1 Haldighatti is the Thermopylae of Mewar the field of Dewair her Merathan ' (Tod, Annals', Part I, P 278)

परिस्थितियाँ को देखते हुए स्पष्ट होता है कि उस समय राणा के पास उसके विश्वस्त अनुयायी भामाशाह और ताराचन्द को छाँवर अन्य कोई नहीं था सवत जि होने उसके घोड़े की लगाम पकड़कर घाँवा का मुँह घुमा दिया और वह अपने घायल सरदार का अपनी मेढ्रा के पीछे के भाग से घाटी के उस पार सुरक्षा पूर्वक ले गये, क्योंकि मुगलों के बायें पक्ष को विच्छिन्न करने के बाद उसके सेना नायक के सेना सहित भाग जाने पर राणा की सेना के दाहिने पक्ष के राजा रामशाह तब और उसके साथ भामाशाह और ताराचन्द भी अपने स्थान से हट गये क्योंकि वहाँ लड़ने के लिए कोई बचा नहीं था। इसका बाद के लगातार प्रताप के सामने और इन गिरे हुए थे। इसका वर्णन जदुनाथ सरकार के शब्दों में —

‘ जब सामान्य रूप से युद्ध होने लगा तब चाहिने बाजू में राजा रामशाह तब मुगल सेना के बायें बाजू के नायक के भाग जाने के बाद अपने स्थान से हट गया। तब लगातार राणा प्रताप के सामने ही बना रहा और इस प्रकार राणा का उस समय तक रक्षा करता रहा जब तक उसे (तब की) जगन्नाथ कछवाणा की मौत के घाट नहीं उतार दिया। (मिनिटरी हिस्ट्री आफ इण्डिया -मून का हिस्ट्री अनुवाद) रामशाह तब मारा जा चुका था। अब भामाशाह और ताराचन्द ने ही घायल राणा प्रताप को युद्ध मदान से निकालकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया था।

हल्दीघाटी युद्ध के महाराणा प्रताप के लौटने की घटना के साथ एक नवान कथानक जाना जाता है। रणछोड़ भट्ट प्रणीत राजप्रशस्ति महाकाव्य में लिखा है - प्रताप को लौटता हुआ देखकर मानसिंह ने तत्काल दो भुगतों को उसके पीछे भेजा। मानसिंह की भाना लेकर शक्तिसिंह भी उसके पीछे चल पड़ा। मानसिंह के उन दो भुगतों ने राणा प्रताप से युद्ध किया। तब प्रताप और शक्तिसिंह ने इन दोनों को मार गिराया। शक्तिसिंह ने प्रताप को आवाज दी कि ओ नील घाँव के सवार, पीछे देखो। ‘ तब राणा ने कहा-‘महीन्द्र शक्तिमित्र हितपी है। इसी कारण शक्तिसिंह का वश राणा का प्रिय बना। ‘ (रा० प्र० संग ४, श्लो २६-३०)। इस लेखक ने उक्त घटना को स्वप्रणालि अमरकाव्य (संग १७ श्लोक ३१-३४) में भी किया है। तब से ही यह कथानक प्रचलित हुआ जान पड़ता है। टाड ने भी इस कथानक को विस्तार से लिखा है। उमन यह भी लिखा है कि- शक्ता अपने व्यक्तिगत द्वेष के कारण प्रताप को छोड़कर अस्वर की सेवा में जा रहा था और इस युद्ध में भी वह उसी की तरफ से लड़ा था, परन्तु दो सबल मुगल सवारों को अपने घायल भाई का पीछा करते देखकर

उमर दिल में भाव प्रेम उमड़ उठा, जिसमें वह उन (मुगल) के पीछे हो गया और उन्हें अपने जाल में मार डाला। इस समय लोना भाई एक दूसरे का गले लगाकर मिले। वहीं घायल चेतक मर गया जहाँ उमका चबूतरा बनाया गया फिर शक्ता ने उस अपना घोड़ा दिया। (एनल्स भाग, १ पृ २८०)

वस्तुतः यह क्या इतिहास मिथ नहीं है। शक्तिमिह (या शक्ति) उदयसिंह के चौबीस पुत्रों में से दूसरे नम्बर पर था।^१ प्रताप के साथ शक्तिसिंह की शिकार सबघी लड़ाई का वर्णन भी मनगढ़त है।^२ रणछोड़मट्ट ने इस युद्ध के १०० वर्ष बाद अपने ग्रंथ लिखे थे, उस अंतराल में कई अनिश्चित बातें प्रसिद्ध हो चुकी थीं। किसी भी फारसी तबारीख में शक्ता का इस युद्ध के समय बादशाही सेना में होना नहीं लिखा है। शक्ता अपने पिता उदयसिंह से नाराज होकर अकबर के पास चला गया था। बाबू रामनारायण दूगड लिखते हैं- कहते हैं कि ज्योतिषिया ने शक्तिमिह के लक्षण बताकर महाराणा (उदयसिंह) के मन में सन्देह डाल दिया था, इसमें उन्होंने शक्तिमिह को अलग करने का प्रयत्न किया फिर वह दृढ़ कर बादशाही चाकरी में चला गया था।^३

अबुलफजल 'अकबरनामा' में लिखता है- मुकाम धौलपुर में राणा उदयसिंह का बेटा शक्तिसिंह बादशाह के साथ था। बादशाह ने उससे पूछा कि राणा ने अब तक निश्चित कबूल नहीं की है इसलिए अगर उस पर चर्चा की जाय तो तू क्या मन्द करेगा? शक्तिसिंह ने बादशाह के सवाल पर कुछ जवाब नहीं दिया और दूसरे हाथ निरुत्सव हासिल किया बिना चित्तौड़ की तरफ गूँच दिया। उसने सोचा कि शायद मेरे कारण लोग यह शका करें कि यही बादशाह का चित्तौड़ पर चला गया है। उसकी ऐसी हरकत से बादशाह बहुत नाराज हुआ और हाडोती फट्ट करती शिवपुर की लड़ाई में चित्तौड़ की तरफ गया।^४

कुछ शक्तिसिंह धौलपुर से सीमा चित्तौड़ पहुँचा और अकबर के चित्तौड़ पर आक्रमण करने के इस निश्चय की सूचना महाराणा उदयसिंह को दी तब सब सरदार बुलाये गए। उनकी सलाह पर राठौड़ जयमल और पता सीसोल्या की दुा की रक्षा का भार सौंपकर महाराणा उदयसिंह अपने परिवार और अन्य

१ टॉड 'एनल्स भाग १ पृ २८०

२ यही पृ २८२-२८६

३ बाबू रामनारायण, राजस्थान रत्नाकर, प्रथम भाग उदयपुर, पृ १११

४ अकबरनामा का एच० बवरिज द्वारा अंग्रेजी अनुवाद क्रि० २, पृ १८० १८०
बोरविनो, भाग २, पृ ७३ ७४

सरदारों व खजाने सहित मेवाड़ के गहाड़ों में चना गया तथा वहाँ आकर बाहर से उसने सशस्त्र की सुरक्षा की।

शक्तिमिह के चित्तौड़ पहुँचने पर दुर्ग के द्वार नहीं खोले गये। मुगलों के साथ सम्पर्क में रहने के कारण शक्तिसिंह पर विश्वास करना संभव नहीं था इस प्रकार उसे दुर्ग के अन्दर नहीं लिया गया।

शक्तिसिंह ने अकबर के आक्रमण का समाचार भीतर भिजवा दिया।¹ शक्तिसिंह के देशप्रेम के इस उत्प्रेरण ने अवश्य ही बाद में महाराणा प्रताप को उसके प्रति आकर्षित किया होगा और इसलिए संभवतः उसको अपने यहाँ बुला लिया होगा। बाबू रामनारायण दूगड ने लिखा है- 'शक्तिसिंह भीलर के खानदान का मूल पुष्प हुआ, शक्तिसिंह के पैदा होने पर ज्योतिषिया ने उसे मेवाड़ की खराबी करन वाला बतलाया था, इसलिये महाराणा ने उसे मार डालने की आज्ञा दी, परन्तु सलुम्बर के रावन सावलदास ने उस की प्राण बचाये, महाराणा स अज्ञ की कि मेरे पुत्र नहीं इसलिये यह बालक मुझको वरुणा दीजिये। महाराणा उदयसिंह का देहांत होने पर महाराणा प्रतापसिंह ने अपने भाई शक्तिसिंह को, जो बाद-शाह अकबर की चाकरी में चला गया था पीछे अपने पास बुला लिया परन्तु थोड़े ही अर्से में दोनों भाईयो का मेल टूट गया और शक्तिसिंह फिर मेवाड़ से बाहर किया गया, तब वह पीछा बादशाही सेवा में आ रहा।'²

इसके बाद शक्तिसिंह मुगल दरबार में बना रहा। अकबर ने उसे मनसब दिया था। 'अकबरनामा' में लिखा है- कि अकबर ने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष (१६०५ ई०) में मनसब सरदारों के मनसब में वृद्धि की थी, इनमें शक्तिमिह का मनसब भी बढ़ाकर १६०० जात और ३०० सवार कर दिया गया था।³ शक्तिसिंह को मुगल बादशाह की ओर से भसरोडगढ़ का जागारी प्रदान की गई थी। वही उसकी मृत्यु हुई। वान मसु १६१५ ई में मेवाड़ मुगल संधि होने पर भसरोडगढ़ को मेवाड़ में सम्मिलित किया गया।⁴

१ डा० देवीलाल पासीवाल 'प्राचीन डिंगल काव्य में महाराणा प्रताप' भूमिका पृ ६

२ बाबू रामनारायण दूगड 'राजस्थान रत्नाकर (मेवाड़ का इतिहास)' पृ २१९

३ अकबरनामा जिल्द ३, पृ ८३९ डा आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर महान, भाग १ पृ ४७३

४ बीरबिलोचन, भाग २ पृ २४६

अतएव मानसिंह की सेना में शक्तिमति का होना और घायल प्रताप के युद्ध क्षेत्र से निकलने पर दो मुगलानों का मार कर उसकी रक्षा करना और मृत चेतक के स्थान पर अपना घोड़ा देकर प्रताप की मदद करना आदि बातें मनगढ़ंत हैं। इनका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। डॉ० गोरीशंकर हीराचंद शोभा,¹ डॉ० रघुवीरसिंह² डॉ० गोपीनाथ शर्मा³ आदि प्रसिद्ध इतिहासकार भी इस कथानक का अतिहासिक मानते हैं।

इस प्रकार यह तथ्य स्वीकार करने में आश्चर्य नहीं रहनी की राणा प्रताप को घायल अवस्था में युद्ध क्षेत्र से बाहर ले जाने और उसे सुरक्षित स्थान तक पहुँचाने में भामाशाह और ताराचंद ने ही बुद्धिमत्ता पूर्ण दूरदर्शिता का परिचय दिया। प्रताप के लौटने के बाद उसका सैनिक भी लौट आये। प्रताप के सब बड़े सरदार तब तक मारे जा चुके थे। ये दोनों भाई ही बच सके।

इस युद्ध में इन दोनों भाईयों ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की और राणा प्रताप के उत्तम महाराणा प्रमाणित हुए। युद्ध के प्रथम दौर के समय राणा की सेना को विजय प्राप्त हुई उसका श्रेय राजा रामसिंह तबरे के माण भामाशाह और ताराचंद को मिलता है। इसका उल्लेख फारसी इतिहासकार अब्दाली और अबुलफजल ने भी किया है।⁴

‘प्रधान का पद प्राप्त होना-

हल्दीघाटी युद्ध में महाराणा प्रताप के अनेक विश्वमनीय वीर सरदार मारे जा चुके थे। जो बचे थे वे बहुत थोड़े थे। भामाशाह जैसे अग्रगण्य और योग्य व्यक्ति को पहचान कर अवस्था और सैनिक क्षमता की दृष्टिसे उपयोगी मानकर महाराणा प्रताप ने भामाशाह को अपना ‘प्रधान’ बनाया तथा रामाशाह महासहायी को इस पद से हटा दिया। इस संबंध में एक दावा प्रसिद्ध है-

“भामो परधानो गर रामो कीधो रह।

घरची बाहर करणनू मित्रियो आय मरह।।’

१ डॉ० शोभा, ‘राज० का इति०’ जिल्द २, पृ. ७५१-५२ पर पाद - टिप्पणी।

२ डॉ० रघुवीरसिंह ‘राणा प्रताप’ पृ. २९ पर पाद टिप्पणी।

३ डॉ० गोपीनाथ शर्मा, ‘राजस्थान का इतिहास’ भाग १, पृ. २८९

४ अबुलफजल - “हमारी जो सेना पहले हमले में ही भाग निकली थी नहीं (बनास) को पार कर ५६ बीस तक भागती ही रही (मुख्यबल तबारीय)। अबुलफजल - “मरसरी तौर से देखने वालों को तब राणा की जीत होनी दिखाई दे रही थी।” (अकबरनामा)।

मवाड भाभा प्रधान गिरी करता है भाभा को दूर किया गया । देश की नरपदादा करने के लिए यह मन आकर मिल गया ।

महाराणा ने भामाशाह को यहसमान देवर समझोचित सूझबूझ का परिचय दिया । मवाड की अस्थिर और नष्ट हाती हुई राजनीतिक और सामाजिक दशा को उबारने के लिए भामाशाह जसे रीति निपुण, उत्तार, त्यागी, गिलोभी और पूण विश्वमनीय ब्यक्ति के इस मनिव और प्रणालिन सवोच्च पद पर नियुक्त किया जाना अत्यंत आवश्यक था ।

भामाशाह ने हल्दीघाटी युद्ध में अपनी सैनिक कुशलता का परिचय दिया था पर तु प्रधान के पद पर रहत हुए उसने अनक बार अपनी प्रणालिन सतिव और प्रबोध कुशलता को प्रदर्शित किया । यहाँ की वह प्रच्छा भवन निर्माता भा सिद्ध हुआ ।

हल्दीघाटी युद्ध १८ जून १५७६- जयपुर शुकन २ स १ ०० को लड़ा गया । इसने ठीक बाद भामाशाह को प्रधान बना दिया गया क्योंकि भाद्रपद सुदि ५ स १ २३(अगस्त १५७६) के सथाणा गांव के ताम्रपत्र में, जो कुम्भलग में महाराणा प्रताप के आदेश से दिया गया था भामाशाह का उल्लेख है जिसने इसे जागी करवाया था । अत स्पष्ट है कि अगस्त १५७६ तक भामाशाह 'प्रधान' नियुक्त किया जा चुका था । वैसे भामाशाह को महाराणा प्रताप के राजवाराहण के बाल स ही कोषाधिकारी और आधिक प्रबोध की जिम्मेवारी सौंप ली गई थी ।

जब भामाशाह का प्रधान का पद सौंपा गया तबभग उसी समय उसका भाई ताराचंद को गोदवाड के विस्तृत भूभाग का स्वतंत्र गवर्नर नियुक्त किया गया । प्रजापालन एवं प्रबोध

मुगल बादशाह अकबर ने मवाड पर अधिकार करने के लिए मार्च 1578 ई में शाहवाल्खा को कई अमीरों और बड़ी मना के साथ भेजा । उस समय महाराणा कुम्भलग में रहता था । अत शाहवाल्खा ने मारी शक्ति कुम्भलग को धरने

१ डा रघुवीरसिंह का मत है कि- मवाड राज्य के बाप तथा आधिक मामला का कायभार प्रताप के राजारोहण के समय स ही भामाशाह के हाथ में रहा । अन्य सारे शासकीय मामले प्रधान रामा महामहारी के अधीन थे । प्रताप द्वारा दिए गए ताम्रपत्र आदि में सन 1577 के उत्तराद्ध से भामाशाह का नाम लिखा मिलता है । सन् १५७८ में रामा महामहारी के स्थान पर भामाशाह को मेवाड राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया । प्रताप के देहावसान के बाद भी भामाशाह इसी पद पर बना रहा । (महाराणा प्रताप पृ ६०) ।

मलगाई सेना ने नाडोल और केलवाडा की ओर नाकेबंदी करके किले के समस्त रास्ते रोक दिये और रसद का घाँट पहुचाना कठिन हो गया। तब सरदारों के आग्रह पर महाराणा न राव अक्षयराज सोनगरा के पुत्र भाण को वहाँ किले की रक्षा का दायित्व सौंपकर स्वयं किले से निश्चलकर राणपुर चला गया और वहाँ से पहाड़ी रास्ते से होकर ईडर राज्य में 'छूलिया' नामक गाँव में पहुँच गया। 3 अप्रैल 1578 को कुभलगढ मुगल के कब्जे में चला गया।

इस समय प्रधान भामाशाह भी कुभलगढ में ही रहता था। वह घेराने दो होने से पहले ही मेवाड़ राज्य के प्रमुख सरदारों और कुभलगढ की प्रजा को लेकर मालवे में 'रामपुरा' की ओर चला गया। वहाँ के राव दुर्गा चन्द्रावत (सीसोनिया) ने उन सबका बहुत मत्कार किया और सुरक्षा प्रदान की।¹

अकबर ने शाहवाजखा को निरंतर तीन बार मेवाड़-अभियान के लिये भेजा। प्रथमवार अक्टूबर 1577 से मई 1578 तक दूसरी बार दिसंबर 1578 से अप्रैल 1579 तक तथा तीसरी बार नवम्बर 1579 से मई 1580 तक वह मेवाड़ में सैनिक कामवाही करता रहा।

मालवा को लूटना

1578 ई. में रामपुरे में अपनी प्रजा का बदोबस्त करने के बाद भामाशाह और उसका भाई ताराचन्द वहाँ से लौटे। इस समय शाहवाजखा और अय्यमुगल सेनानायक मेवाड़ से चले गये थे। तब मेवाड़ की सेना को साथ लेकर उन दोनों ने अकबर के सूबा मालवा में लूटमार मचायी तथा वहाँ से ढण्ड के रूप में 25 लाख रुपये और बीस हजार अश्विया प्राप्त की। यह बड़ी रकम वसूलकर मुजगात के छूलिया ग्राम (ईडर) पहुँचकर उन दोनों भाईयों ने इसे महाराणा प्रताप को भेंट की।² इस राशि से प्रताप को अपनी सेना को पुनः संगठित करने में मदद मिली और उसने आकर मेवाड़ विजय का अभियान प्रारम्भ किया। कुभलगढ हाथ से चले जाने के बाद महाराणा काफ़ी निराश हो चुका था। इन दोनों भाईयों की इस वक्तवगारी से उसे पुनः बल मिला।

अक्टूबर 1580 में दरामखा के पुत्र मिर्जा खानखाना को अकबर ने अजमेर के सूबेदार पद पर नियुक्त किया। इस मेवाड़ के मामले में सैनिक अभियान न चलाने का सभ्यतः आदेश दिया गया था। अतः 1580 से 1584 ई. के अठारवर्षीय चार वर्ष के काल में मेवाड़ में प्रायः शांति बनी रही।³ इस समय प्रताप को अपनी

१ बीरबिनाद, भाग २, पृ. १५७

२ बीरबिनाद, भाग २, पृ. १५७

३ डा० रघुवीरसिंह, महाराणा प्रताप, पृ. ४१

सैनिक बायबाहियां कर मेवाड पर पुन अधिभार करने का मोर्चा मिला ।

दिवेर पर अधिकार

मेवाड लौटने पर महाराणा ने पुन स यत्नगठन किया । सबसे पहले दिवेर के शाही घाने पर महाराणा ने आक्रमण किया यह कु भलगढ़ से ४० किलोमीटर उत्तरपूर्व में घरावली पर्वत श्रेणी की एक घाटी के सिरे पर स्थित है । इससे इसको सैनिक दृष्टि से बड़ा महत्व था । इस घाने पर सुतानछा नामक मुगल सेनानायक नियुक्त था । प्रतापसिंह के साथ भामाशाह और उसके साथी भी थे । इस लड़ाई में कुंवर भमरसिंह ने वहां के घानेदार सुतानछा पर बर्छे से वार कर उसकी छाती चीर दी । वह घाटे सहित मारा गया । घाने के अन्य लोग भी मारे गए । कुछ भाग छुटे । वहलोलखा नामक मुगल को महाराणा ने तनवार के एक ही वार में घोड़े सहित फाट डाला । इस प्रकार दिवेर की नाल पर महाराणा का अधिकार हो गया । इस आक्रमण में भामाशाह की सैनिक बायबाही शसनीय रही । यह विजय मुख्यतया भामाशाह और उसके साथियों की मदद से प्राप्त हुई थी ।

टॉड ने दिवेर की लड़ाई की मेराथान के युद्ध से तुलना की है ।² मेराथान के युद्ध का यूरोप के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है ।

१५७८ के वर्षाकाल के अंत में प्रताप ने मेवाड में स्थित अनेक शाही घानों को नष्ट कर अपने अधिकार में कर लिया

बादशाह के प्रलोभन को ठुकराना

मुगल बादशाह अकबर की नीति रही थी कि वह शत्रु को कमजोर करने के लिये उसके खास-खास व्यक्तियों सरंगार और पदाधिकारियों को घन और जागीर का लालच देकर अपनी ओर मिला लेता था । सभी भेदनीति अपनाकर एक राजपूत को दूसरे राजपूत के विरुद्ध उच्च मनसब व प्रतिष्ठा देकर अपना सहयोगी बना लेता था । उमने राजपूत राज्यों में आंतरिक प्रशासन करने वाले पदाधिकारियों को भी इसी प्रकार अपने दरबार में बुला कर सम्मान दिया । बाकानेर के भोमवान जाति के बच्छावत बमचंद को अपने साथ बैठाकर और दरबार में स्थान देकर अपना प्रभाव बढ़ा लिया था । इसी प्रकार मन्तर गा प्रताप के प्रधान भामाशाह को भी भेद-नीति से तोड़ने का उमने प्रयास

१ वीरविनोद भाग २ पृ १५८, डा के आर का, नगो लिखते हैं - In the last fight of Pratap against the mughals, Bhamashaha took a prominent part of the battle of Diver along with the Chundawals and Sakhtavats (Studies in Rajput History p 52)

२ Tod 'An als and Antiquities of Rajasthan' part I p 278.

किया। जब भामाशाह मालवे की ओर गया हुआ था, तब उसने मिर्जा अब्दुरहीम खानखाना को सेना देकर मालवे की ओर भेजा। उसने जाकर भामाशाह से भेंट की। खानखाना ने समझा बुझाकर और ऊँचे पद का लोभ देकर भामाशाह को बागशाह की सेवा में लान का प्रयत्न किया। परन्तु भामाशाह ने इसे नामंजूर कर लिया।¹ उस समय भवाड राज्य एवं उसके स्वामी माहाराणा प्रताप की बड़ी सत्तावस्था चल रही थी। मेवाड में प्रशासन अस्तव्यस्त हो चुका था। आर्थिक और सैनिक स्थिति विगड़ चुकी थी। ऐसी सवट की घड़ी में भामाशाह ने वैभव-शायी जीवन के प्रलोभन को ठुकरा कर अपनी परम देशभक्ति एवं स्वामिभक्ति का परिचय दिया।

चावड में नयी राजधानी कायम करना --

उस समय मेवाड की दोना राजधानियाँ चित्तौडगढ़ और कुम्भलगढ़ मुगलों के अधिकार में थी। कुम्भलगढ़ पर शाहबाजखा ने अधिकार कर लिया था। परन्तु माहाराणा वहाँ से निकलकर पहाड़ा में चला गया था।² अतः वहाँ शाही सेना के कुछ सैनिक छोड़कर स्वयं माहबाजखा गोगून्दा गया, फिर उदयपुर आया। दोनों जगहों पर उसका आसानी से कब्जा हो गया। फिर वह बासवाड़ा और मालवा का ग़ार चला गया।² दिवेर की नाल पर कब्जा करने के बाद माहाराणा अपने साथियों के साथ कुम्भलगढ़ की ओर बढ़ा। प्रधान भामाशाह उसके साथ था। हम्पीरसर नामक तालाब पर डेरा डाला गया, यह तालाब कुम्भलगढ़ के समीप है। माहाराणा के आगमन का समाचार पाकर कुम्भलगढ़ पर स्थित मुगल सैनिक भाग गए। कुम्भलगढ़ पर माहाराणा का आसानी से अधिकार हो गया। वहाँ कि सुरक्षा कर प्रबंध करके माहाराणा ओबरा ग्राम में ठहरा वहाँ से जावर पर अधिकार कर चावड में निवास किया। जब छापन के राठौड़ों ने अधीनता नहीं मानी तब माहाराणा ने गुणा-चावडिया राठौड़ को चावड से निकाल कर

१ बोरविना, भाग २ पृ १५८ डॉ० के प्रार कातूनगो लिखते हैं - The astute politician and diplomat Khan Khana Abdur Rahim tried hard to induce Bhamu Shah to the service of the Emperor by alluring offers but failed (Studies in Rajput History, p 52)

डॉ० एचवीरमह का विचार है कि -- सन् १५८१ के अंत तक उस (प्रताप) ने कहीं भी कोई सैनिक कार्यवाही नहीं की। प्रताप के इस शांतिपूर्ण व्यवहार से प्रेरित होकर मिर्जा खाँ ने उस वक़्त भामाशाह से संबंध साधा और उससे मोहव किया कि वह प्रताप को समझा बुझाकर प्रकवर के दरबार में जान की राजी करे। परन्तु भामाशाह ऐसा करने की तयार नहीं हुआ। (माहाराणा प्रताप, 'पृ ४२)

२ डॉ० मोभा, उदयपुर राज्य का इति० जिल्द २, पृ ७६०

वहाँ अधिकार कर लिया। इस प्रकार १५८२ ई० में महाराणा ने चावड म नयी राजधानी स्थापित की। चावड म महाराणा के बनवाए हुए महलो के छहहर ओर चामुडामाता का मंदिर अब भी विद्यमान है।^१ वहाँ रहते हुए महाराणा न बासवाडा और डूंगरपुर जो बागशाही अधीनता स्वीकार कर चुके थे, पर सनिक अभियान भेज उनको अपने अधीन बनाया।^२ इस समस्त बागवाही में भामाशाह उसके साथ रहा। चावड म महाराणा के महलो के सामने नाचे की ओर भामाशाह की हवेली के छण्डहर अब भी मौजूद हैं।

मेवाड पर पुन अधिकार

दिसम्बर १५८४ मे अक्बर ने जगन्नाथ कछवाहा को सँ यहहित मेवाड म भेजा। वह अगस्त १५८५ पर्यंत मेवाड म रहा। उसने कई बार प्रताप के निवासस्थान पर आक्रमण किया प्रताप द्वारा अधीन किये गये सब प्रदेशों पर पुन विजय प्राप्त की और मेवाड को बर्गद करने की कई बागवाहिया कीं। परंतु वह प्रताप को पकड़ने मे सफल नहीं हो सका, फिर भी प्रताप को इस अवधि मे गभीर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा उसे और उसके साथियों को निरंतर पर्वतीय शत्रो म यहाँ वहाँ घूमना पड़ा। जगन्नाथ कछवाहा दो वर्ष तक मेवाड म रहा। अगस्त १५८५ मे अक्बर पंजाब और काबुल की तरफ चल पड़ा, तब जगन्नाथ कछवाहा को भी उसने मेवाड से बुला लिया।

उसके चले जाने के बाद मेवाड के शासक और यहाँ का प्रजा ने चन की सास ली। इसके बाद प्रताप की मृत्यु (१५९७ ई) पर्यंत ११ वर्ष के अंतराल म अक्बर ने मेवाड पर कोई सन्धि अभियान नहीं भेजा। बादशाह इस अवधि म उत्तर पश्चिमी सीमांत म अफगानों के साथ युद्धों मे व्यस्त रहा अतः उस मेवाड की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला। महाराणा ने इसके बाद एक ही वर्ष (१५८६ ई) म चित्तौडगढ़ और मांडलगढ़ को छोड़कर सारे मेवाड प्रदेश पर पुन आधिपत्य कर लिया। इस समग्र कार्य मे भामाशाह के

१ वीरविनोद भाग २, पृ १५९

२ वीरविनोद, भाग २ पृ १५८-१५९ डा श्रीभा राजपूताने का इतिहास जिल्द २ पृ ७६१। इस लड़ाई में चौहानों ने प्रतिरोध किया। चौहानों के सरदार रावत भाण (मारगनेबोन)को सना देकर भेजा गया। सोमनदी पर लड़ाई हुई। उसम रावत भाण गभीर घायल हुआ और उसका काका रणसिंह मारा गया। चौहानों की हार हुई। डूंगरपुर और बासवाडा के रावतों ने महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली।

यागदान को स्वीकार करने हुए कविराज श्यामलदास ने लिखा है- “इन महाराणा ने फिर फौज इकट्ठी करके शाही थानों पर हमला किया जो उनके प्रधान भामाशाह की हिम्मत से हुया था। चित्तौड़, माहलगढ़ और भजमेर के विवाय कृत चादनाही थान डाल दिये गये”¹

मेवाड़ के पुनर्गठन और पुनर्व्यवस्था को लागू करने में भी प्रधान भामाशाह का बहुत योग रहा। उनके काल में उजड़े हुए मेवाड़ में पुनः बस्तियाँ बसाई गई थीं तथा व्यवस्था की गई व्यापार की ठीक किया गया, और मार्गों की सुरक्षा का प्रबंध किया गया। भामाशाह द्वारा महाराणा प्रताप की आज्ञा से जारी किए गए ताम्रपत्रों, परवानों आदि से इस बात की स्पष्ट जानकारी मिलती है। भामाशाह जस अनुभवी और कुशल प्रबंधक के लिए यह सब सहज और उचित था।

आर्थिक सहयोग-

चित्तौड़गढ़ पर १५६८ ई में महाराणा उदयसिंह के काल में ही मुगलों का अधिकार हो चुका था। १५७८ ई में मुगल सेनापति शाहवाज खाँ ने कुम्भलगढ़ गंगूदा और उदयपुर पर भी आधिपत्य कर लिया था, तब महाराणा प्रताप को अपने परिवार और साथियों के साथ पहाड़ों और जंगलों में सुरक्षा हेतु भटकते रहना पड़ा। उसे सात बार ऐसे मौके आए जब खाना छोड़कर भागना पड़ा। जंगल में कभी सावा कोना जम तृण आदि का भोजन करते निर्वाह करना पड़ा। भिन्न-भिन्न युद्धों में उसके प्रच्छेद सैनिक और अनेक सरदार मारे जा चुके थे। मुगलों ने देश को उन्नाह लिया था बस्तियाँ लूट कर दी थीं कृषि बाणिज्य-व्यापार रुक हो गया था मेवाड़ के अपार धन जन की हानि हुई थी। महाराणा प्रताप ने इन सारी परिस्थितियों में आगे सघन की जारी रखने में अपने को असमर्थ पाकर मारवाड़ होकर मिथ की ओर जाने का निश्चय किया हो भयवा मुगल आधिपत्य को स्वीकार करने में अपना हित समझा था। क्योंकि धन के अभाव में नवीन सैन्य संगठन कर मेवाड़-विजय के अभियान को गति देना असम्भव जान पड़ने लगा। ऐसी विपन्न अवस्था में प्रधान भामाशाह ने विपुल धनराशि लेकर महाराणा प्रताप को भेंट की, जिसके द्वारा पञ्चवीस हजार सैनिकों का बारह वर्ष पयः उ निर्वाह किया जा सकना था। इस धन से ही प्रताप ने पुनः मेवाड़ एरन्तित की और मराठ विजय में सफल हुए।² भामाशाह के इसी सामयिक धन सहयोग

१ बीरबिना भाग २ पृ १६३-१६४

२ जयसिंह गहनाठ, “राजपूताना का इतिहास”, भाग १ पृ २३७

को मेवाड़ में चिरस्मरण किया जाता रहेगा। यह घटना १५८० ई के लगभग की होनी चाहिए। भामाशाह द्वारा समर्पित किया गया धन मेवाड़ का ही खजाना था अथवा भामाशाह और उसके पूर्वजों द्वारा अर्जित की गई निजी सम्पत्ति थी, इस सम्बन्ध में विद्वानों के दो विभिन्न मत हैं।

जनरल जेम्स टाड ने लिखा है- शत्रु के प्रवाह को रोकने में असमर्थ होने के कारण उस (प्रताप) ने अपने चरित्र के अनुकूल एक प्रस्ताव किया और तदनुसार मेवाड़ एक रक्त से अशुद्ध चित्तों को छोड़कर सिसोदियों को सिन्धु के तट पर ले जाकर वहाँ की राजधानी सोमड़ी नगर में अपना लाल भण्डा स्थापित करने एवं अपने तथा अपने निदम शत्रु (अकबर) के बीच में रेगिस्तान छोड़ने का निश्चय किया। वह अपने कुटुम्बियों और मेवाड़ के रूढ़ और निर्भीक सरदारों के साथ जो अपमान की अपेक्षा स्वदेश निर्वासन को अधिक पसन्द करते थे प्रवर्त्ती पक्ष से उतर कर रेगिस्तान की सीमा पर पहुँचा। इतने में एक ऐसी घटना हुई जिससे उसको अपना विचार बदलकर अपने पूर्वजों की भूमि में ही रहना पड़ा। यद्यपि मेवाड़ की छानों में सत्ताधारण कठोरता के नाम का उल्लेख मिलता है तो भी वे अद्वितीय राजवर्त्मन के उदाहरणों से खाली नहीं हैं। प्रताप के मंत्री भामाशाह ने, जिसके पूर्वज बरसा तक उसी पद पर नियत रहें थे, इतनी सम्पत्ति राणा को भेंट कर दी कि जिससे पच्चीस हजार सेना का १२ बंद तक निर्वाह हो सकता था। भामाशाह मेवाड़ के उद्धारक के नाम से प्रसिद्ध है।^१

१ Col James Tod- 'Unable to stem the torrent he had formed a resolution worthy of his character he determined to abandon Mewar and the blood stained Cheetore (no longer the stay of his race) and to lead his Seesodias to the Indus plant 'the crimson banner on the insular capital of the Sogdians and leave a desert between him and his inexorable foe With his family and all that was yet noble in Mewar, his chiefs and vassals a firm and intrepid band who preferred exile to degradation, he descended the Aravalli, and had reached the confines of desert when an incident occurred which made him change his measures and still remain a dweller in the land of his forefathers If the historic annals of Mewar record acts of unexampled severity, they are not without instances of *'

इस अवध में डा गीरोशकर हीराचंद ओभा का मतव्य है कि भामाशाह द्वारा लाकर प्रताप को भेंट की हुई सम्पत्ति उसकी या उसके पूर्वजों द्वारा निजी तौर पर अर्जित की हुई नहीं थी। मपितु यह मेवाड का ही चित्तौड़गढ़ से स्थानांतरित किया हुआ खजाना था, जो अयन छिपाकर रखा गया था और जिसे वह भकेला ही जानता था। 'महाराणा कुभा और सागा की संचित की हुई सारी सम्पत्ति बहादुरशाह की पहली चढ़ाई के पूर्व ही मुसलमानों के हाथ न लगे इस विचार से चित्तौड़ से हटाकर पहाड़ी प्रदेश में सुरक्षित की गई थी। इसा से बहादुरशाह और अकबर को चित्तौड़ विजय पर कुछ भा द्रव्य बहा से हाथ न लग सका। भामाशाह महाराणा का विश्वासपात्र प्रधान होने के कारण उसी की सलाह के अनुसार मेवाड राज्य का खजाना सुरक्षित स्थानों में गुप्त रूप से रखा जाता था, जिसका व्यौरा वह (भामाशाह) एक वही मरखा करता था, और आवश्यकता पड़ने पर उन स्थानों में द्रव्य निकाल कर लड़ाई का खर्च चनाया करता था। वह महाराणा प्रतापसिंह के पीछे महाराणा भ्रमरसिंह का प्रधान बना और महाराणा की सम्पत्ति की व्यवस्था भी पहले के अनुसार बहा करता रहा। अपनी अंतिम बीमारी के दिनों में उसने उपयुक्त वही अपनी स्त्री को देकर कहा कि इसम राज्य के खजाने का व्यौरा विवरण है इसलिय इसको महाराणा के पास पहुँचा देना।^१

डा ओभा ने विभिन्न प्रमाण जुटाकर यह प्रमाणित किया है कि महाराणा प्रताप बहुत सम्पत्तिशाली था और उसके पास धन की कोई कमी नहीं थी। इसी से वह तथा उसका पुत्र दोनों दरमा तक बादशाहा से लड़ने में समर्थ हुए।^२

कविराजा श्यामलदास ने भी लिखा है "भामाशाह बड़ी जुरअत का आदमी था महाराणा प्रतापसिंह के शुरू समय से महाराणा भ्रमरसिंह के राज्य के २॥

* unparalleled devotion The Minister of Pertap whose ancestors had for ages held the office placed at his prince's disposal their accumulated wealth which, with other resources is stated to have been equivalent to the maintenance of twenty five thousand men for twelve years The name of Bhama Sah is preserved as the saviour of Mewar ('Annals and Antiquities of Rajasthan, Volume I, P 275)

१ डॉ ओभा- ' राजपूताने का इतिहास , जिल्द २ पृ १३०२ १३०३

२ वही, जिल्द २, पृ ७७४ ७७८

तथा ३ वष नव प्रधान रहा उसने ऊपर लिये हुई बड़ी बड़ी सड़ाईयां म हजारों आदमियों का खच चलाया । । इसने मरन व एक दिन पड़िले अपनी स्त्री को एक वही अपने हाथ की लिखी हुई टी, और कहा कि इसमे मेवाड के खजाने का कुल हाल लिखा हुआ है जिस वक्त तकलीफ हो यह बही उन (महाराणा) को नजर करना । यह खरडवाह प्रधान इस बही के निध हुए खजान से महाराणा अमरसिंह का कई वगैरे तक खच चलाता रहा ।'¹ कविराजा श्याममन्त्र न भी कही भामाशाह द्वारा स्वयं की सम्पत्ति मेवाड के उडार हतु भेंट करने की बात स्वीकार नहीं की है ।

डा कालिकारजन कानूनगो का विचार है नि प्रताप क भाग्य के सबट के वपों में भामाशाह द्वारा लाकर दिया हुआ धन अकबर के मालवा सूबे की दुकर प्राप्त किया गया था ।²

परन्तु परिस्थितियों को देखते हुए उपर्युक्त मत समीचीन नहीं जान पड़ता । १ यह समझ नहीं कि अपने ही खजाने का विवरण महाराणा प्रतापसिंह को न मालूम रहा हो और उस उसका मंत्री भामाशाह ही जानता हो । मेवाड में अतुल सम्पत्ति थी इससे इकार नहीं किया जा सकता यदि ऐसा नहीं होता तो कु भा के काल में महान् निर्माणवाय नहीं हो पाने प्रताप ने भामाशाह को अपना प्रधान तो हल्दीघाटी युद्ध (१५७६ ई) के कुछ दिनों बाद बनाया, यह इतिहास का सत्य है । जबकि चित्तौड़गढ़ का पतन १५६८ ई में महाराणा उदयसिंह के काल में ही हो चुका था । अतः वहां से स्थानांतरित खजाना या तो कु भनगण पहुंचा दिया गया था, या अथ किसी सुरक्षित स्थान पर । उस समय से ही भामाशाह को खजाने का ज्ञान होना भी ठीक प्रतीत नहीं होता । भामाशाह उदयसिंह के काल में ही किसी महत्वपूर्ण पद पर रहा हो ऐसा कही उल्लेख नहीं मिलता । स्वयं प्रताप भी नहीं जानता था कि वह राजगद्दी पर बठाया जायगा ।

२ विश्रमादित्य के काल में १५३२ ई में गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने चित्तौड़ को घा घेरा तब भारी घनराशि लेकर रानी कमवती ने उससे संधि कर ली । कुछ समय बाद बहादुरशाह ने पुन चित्तौड़ को घेर लिया और उस समय

१ बीरबिनोद भाग २ पृ २५१

२ Dr K R Qanungo - During the critical years of Pratap's fortune Bhama Shah raided Akber's subha of Malwa' and brought a booty of twenty lakhs of ruppees and twenty thousand ashrafis to the Maharana' ('Studies in Rajput History, P 52)

‘बितौड का दूसरा शाका’ (जीहर) हुआ। इस प्रकार बाहरी आक्रमणों से मेवाड को अपार जन धन की हानि हुई थी।

प्रताप ने मुगल-समर्थन के काल में मुगलों को रसद न पहुँचे इस इरादे से सारे मेवाड क्षेत्र में बस्तियों को खाली करके उन्हें जंगलों और पहाड़ों में स्थानांतरित करा दिया था। उसने अपनी प्रजा में यह भी आदेश प्रसारित करा दिया कि कोई भी मरदाना भाग में खेती न करे खेती करने पर उसे कठोर दण्ड दिया गया। इन बाधवाहियों से राज्य की आय का स्रोत नष्ट हो गया। मुगलों के विध्वंसक कार्यों से भी राज्य का आय की धक्का लगा। व्यापारिक भाग बंद हो चुके थे और व्यापार-वाणिज्य भी ठप्प हो गया था। ऐसी दशा में प्रताप के पास राज्य की आय का संग्रह होना संभव नहीं था।

देश की इस आंतरिक दुःस्थिति का पता उस घटना से भी चलता है कि १६१५ ई में मुगलों के साथ महाराणा भ्रमरसिंह की संधि होने पर कुवर कणसिंह उस दिन शाहजादा खुरम के पास गया। “जब शाहजादे ने कणसिंह को अपने साथ भ्रमरमेर चलने के लिए कहा, तो कणसिंह ने अपने मुल्क की बर्बादी व तकलीफों का हाल कहकर जल्दी सफर न कर सकने का उज्र किया। शाहजादे ने ५०००० रु नकद अपने पास से सफर खर्च के लिए कुवर को दिये, उब कुवर ने अपना सामान दुःस्त करके शाहजादे के साथ चलने की तैयारी की।”^१

भवश्य ही महाराणा प्रताप और भ्रमरसिंह के काल में मेवाड की आर्थिक स्थिति विगड़ चुकी थी। राज्य का खजाना खाली हो चुका था, मुगलों के साथ संधि होने पर पुनः मेवाड का आर्थिक विकास हुआ। महाराणा कणसिंह और जगतसिंह के काल में मेवाड की अच्छी आर्थिक उन्नति हुई। वह शांतिवाला था। इसी कारण महाराणा जगतसिंह और राजसिंह विभिन्न निर्माण कार्य और दान कर सके। महाराणा राजसिंह द्वारा सिंहासन पर बैठने के वष (स १७०९ = १६५२ ई) में एकलिंगजी में ‘रत्नों का तुलादान’ करना विवादास्पद है। डॉ. श्रीमाने लिखा है-“उसने (राजसिंह ने) उसी वष के मागशीप मास में एकलिंगजी जाकर रत्नों का तुलादान किया। समस्त भारतवर्ष में रत्नों के तुलादान का यही एक प्राचीन लिखित प्रमाण मिला है।”^२ डॉ. श्रीमाने भूल से इसे ‘रत्नमयी’ तुला समझा है जबकि यह तुला रत्ननिर्मित थी जिस पर सोना और रत्न जड़े हुए थे। जगन्नाथराय प्रशस्ति में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है-

१ धीरविनोद, भाग २ पृ २३८

२ डॉ. श्रीमाने, राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ ७७७

वर्षे निष्ठयवरगिणयुने मागशीर्वेपि शुक्ले पचम्या -
 मेरुतिने वनवमणिमयी सतुला राजताह्याम ।
 राणा श्री राजसिंह क्षितिपतिमुबुट श्रीजर्गसिंहपुत्र
 कृत्वा तत्र द्विजार्भ्यान्सपदि विहितवान् राजराजेद्रुतुल्यान् ॥ १

राजसिंहकालीन एकलिंग - मन्दिर की प्रशस्तिने भी लिखा है-

“ राणा श्री जगतसिंहात्मज श्रीराजसिंहनृपति प्रीत्यर्कलिगाग्रतो रत्नै पूर्ण-
 तुलाकृती व्यरचयत् सच्चिन्नकूटाधिप ॥१८॥

एकलिंग के मन्दिर की यह प्रशस्ति स १७०९ की है, वतमान में यह प्रशस्ति राजकीय संग्रहालय उदयपुर में स्थित है (डा ओझा, राज० का इति०, जिल्द २, पृ ८४२ पर पादटिप्पणी)

इस तुला को फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणों में बांट दिया गया था । अतः रत्नों के तुलादान वाली बात इतिहास सिद्ध नहीं है ।

इन प्रमाणों से जात होता है कि मेवाड़ राज्य की आंतरिक स्थिति बिगड़ चुकी थी । राज्य का खजाना उस समय खाली हो गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।

३ भामाशाह ने यदि मेवाड़ का हा खजाना लाकर दिया होता तो यह उसका कतव्य था इसके लिए उसके प्रति किसी विशिष्ट आदर या आभार की आवश्यकता नहीं थी । और, सैनिक अभियानों का संचालन करना ‘प्रधान’ के दायित्व था । प्रधान बनने पर यह राज्यकीय स सेना का संचालन करना ही रहा । परन्तु बाद में उसके वंशजों को मेवाड़ के शासकों द्वारा जो विशिष्ट सम्मान दिया गया उससे प्रमाणित होता है कि भामाशाह ने ऐसा ही कोई असाधारण कार्य किया होगा जो अन्य किसी ने नहीं किया । जसा कि मेवाड़ में मायता प्रचलित रही है भामाशाह ने अपनी स्वयं की सम्पत्ति महाराणा को समर्पित की थी । यही वह असाधारण कार्य होना चाहिए जिससे महाराणा अत्यंत प्रभावित एवं प्रसन्न हुआ । बाद में महाराणा ने घोसवालों की जाति में भामाशाह के वंशजों को जाति भोज आदि के अवसर निलक निकालन का सर्वोच्च सम्मान प्रदान करवाया ।

४ भामाशाह का पिता भारमल्ल स्वयं धनी व्यक्ति था । प्रायः धनी और कतव्यनिष्ठ व्यक्तियों को राज्य में बाहर से आमंत्रित कर उच्चपद दिये जाते थे । राणा सांगा ने भारमल्ल को छलवर से बुलाकर राणयम्भोर का किलदार नियुक्त

किया था। आर्थिक विपन्नावस्था के समय राज्य के धनी मानी मेंनों से धन लेने की परम्परा अब तब प्रचलित रही है। ऐसे मौकों पर यदि स्वयं धनी लोग अपना धन स्वच्छया दे दें तो न केवल राज्य के हित में होता, अपितु स्वयं के लिए भी उपयोगी होता। राज्य ही तो धनी लोगों के धन, माल, सम्पत्ति और व्यापार की सुरक्षा का निर्वाह करता था।

५ नागपुरीय लु कागच्छ की पट्टावली में भी भारमल्ल की अठारह करोड़ की धनराशि का स्वामी बताया है। इससे उसके धनाढ्य होने की सूचना मिलती है।

६ महाराणा उदयसिंह ने भारमल्ल को १५५३ ई में एक लाख का पट्टा प्रदान किया था। इतनी बड़ी जागीरी या तो किसी बड़े सरदार को दी जाती थी, या निकट के रिश्तेदार को या किसी महानु, वतध्यनिष्ठ और बहुत धनी व्यक्ति को ही दी जाती थी, जो उसके सम्मान के अनुवूल होती। इस पट्टे के कारण भी भारमल्ल के पास और अधिक धन एकत्र हो गया था।

७ प्रताप ने भामाशाह को मेवाड़ राज्य का प्रधान नियुक्त किया था। प्रधान का कर्तव्य है कि वह राज्य की बिगड़ती दशा को यत्नकन प्रकारेण सुधारे। अतः भामाशाह ने राज्य का उद्धार करने के लिए अपनी सम्पत्ति भी अर्पित कर दी हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

८ यदि यह माने कि भारमल्ल और भामाशाह ने मेवाड़ के उच्चपदी पर रहते हुए धन अर्जित किया ही, तो भी वह मूलतः मेवाड़ की ही सम्पत्ति थी। भामाशाह ने उसे विपत्ति के समय पुनः महाराणा को अर्पित कर अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दिया था।

९ प्रताप के त्याग स्वाभिमान और बलिदान से उसका प्रधान भामाशाह प्रभावित हुए बिना नहीं रहा होगा, अतः मेवाड़ के उद्धार के लिए अपनी पारिवारिक व्यक्तिगत संपत्ति को भी महाराणा को सौंपकर उसने गौरव का अनुभव किया होगा। उस समय व्यक्तिगत स्वायत्त एक धन की तुलना में मेवाड़ की स्वतन्त्रता का लक्ष्य महानु था। प्रताप का यत्न न केवल राजस्थान, अपितु पूरे देश में फैल चुका था।

१० एक आन्धीन हस्तलिखित अक्षरों में लिखा है "राणाजी की अठारहमिथजी की विषामाह पाति साहजी रो पीजा जोर दबाया। पवगु नी क्यु ही पड़ के नहीं। तद दीवाण जी कह्यो। हु अहमन्तर २ पातिसाह तीरे जासा। तर सों भारी कह्यो। बारा बरस ताइ पाच हजार घोडा नी तेल न पावण ताइ चाहाजसी, सी

हु दावें ही ठठा मु देसु । दीवाण इसी मत विचारो ।¹

इससे प्रकट होता है कि भामाशाह ने स्वयं का धन महाराणा को देने का वादा किया ।

उपयुक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि भामाशाह ने अपनी स्वयं की अर्जित पारिवारिक विशाल सम्पत्ति का ले जाकर महाराणा प्रताप को सहाय भेंट कर दिया था और उसे मेवाड के पुन उद्धार स्वतंत्र करने के लिए प्रेरित किया । देशभक्त, कमवीर मेवाड उद्धारक भामाशाह का नाम इसी कारण अमर हो गया ।

अहमदाबाद-अभियान

महाराणा प्रतापसिंह की मृत्यु (१५९७ ई) के बाद चावड में मेवाड की राजगद्दी पर उसका ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह बैठा । भामाशाह अपनी मृत्यु पश्चात् महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल के प्रारम्भिक ढाई तीन वर्षों तक प्रधान पद पर बना रहा । महाराणा अमरसिंह ने भी पिता की नीति का अनुसरण करते हुए मुगलों के साथ संधि जारी रखा । उसके काल में भामाशाह ने अहमदाबाद पर आक्रमण कर वहाँ से दो करोड़ रुपये और बहुत सा सामान प्राप्त कर महाराणा अमरसिंह को भेंट किया । इस घटना का उल्लेख 'सुमाणरासो' में विस्तार में मिलता है । इसका लेखक जन कवि नीलतविजय था जिसके जन्म का नाम दलपत था । उसने उदयपुर के राणाओं के विषय में सुमाणरासो नामक राजस्थानी भाषा के विस्तृत काव्य की रचना की है । इसकी रचना महाराणा सप्रामसिंह (द्वितीय) के राज्यकाल (स १७६७ से १७९० अर्थात् १७११ से १७३४ ई) में हुई थी । यद्यपि यह उक्त घटना के लगभग डेढ़ सौ वर्ष बाद लिखी गई थी, परन्तु इसमें अनेक नवीन तथ्यों की जानकारी मिलती है । भामाशाह के सम्बन्ध में भी उसके अहमदाबाद पर आक्रमण का वर्णन दिया है ।²

१ यह हस्तलिखित ग्रन्थ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में सुरक्षित है, प्रथांक ३५४६४ । इस ग्रन्थ में प्रताप संबंधी कुछ महत्वपूर्ण बातों का वर्णन मिलता है । इस ग्रन्थ के आधार पर डॉ॰ पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ने एक लेख प्रकाशित कराया है, देखें प्रतापस्मृति ग्रन्थ, पृ 134 135।

२ कपड पीया कापडा, लीघो घन दो कोड ।

साथ समान किया सहू, समा किया सजोड ॥३५१३॥

अहमदाबाद सु भामो साह अमर पास आयो उछाह ।

असो सहस साथे असवार, आए बाए अत न पार ॥३५१४॥

('सुमाणरासो' देखें परिशिष्ट)

धन-प्रेम

‘नागपुरीय लु कागच्छ पट्टावली’ से ज्ञात होता है कि भामाशाह लु कागच्छ का अनुयायी था। उसके गुरु का नाम ‘देवागर’ था। भामाशाह ने दिगम्बर मतानुयायी नरसिंहपुरा शाखा के अनेक लोगों को अपने मत में दीक्षित कराया था। बहुत सारा धन देकर उसने १७०० घरों को अपने मत के बना लिया था। उस समय उसके इन प्रयासों से लु कागच्छ का बहुत पैलाव हुआ और भिण्डर आदि गावों में इस मत के अनुयायी एक लाख बीरासी हजार से भी अधिक आदमियों को घर बन गये।^१ इस प्रकार भामाशाह ने धार्मिक भावना को प्रदर्शित किया।

लु कागच्छ के अनुयायी होने पर भी भामाशाह धार्मिक उदार रहा, उसने अनेक वर्षों तक शायद ही अनेक जन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया था जो मुस्लिम आक्रमणों के कारण विध्वंस हो गये थे।

उदारदानी

भामाशाह उदारमना दानी भी था। वह मुक्तहस्त से चारणों कवियों और जरूरतमंदों और अन्य लोगों को धन दिया करता था।

डॉ० मोहनलाल जिन्नासु ने लिखा है- ‘एक बार भामाशाह ने महाराणा प्रताप को उदयपुर में प्रीतिभोज पर आमंत्रित किया, जिसमें सब भोसवाला को चोटा दिया गया। इसमें निमंत्रण पाकर कवि शंकर भी सम्मिलित हुए। कहते हैं कि भामाशाह ने इन्हें इस अवसर पर एक अमूल्य नग भेंट किया था।’ (राजस्थान में चारणों का डिंगल साहित्य में योगदान नामक अप्रकाशित शोध-प्रबंध)।

कवि शंकर बारहठ चारण जाति का था। भ्रम भोज के अवसर पर इसका बनाया निम्नलिखित दोहा प्रचलित है-

“भोमे जग जिमाडियो, नेवतरिया नव छण्ड।

सिर तपिया वासक तण काजलियो ब्रह्म ड ॥”

इसका उल्लेख डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने अपने ‘राजस्थानी भाषा और

१ ‘पुन भामाशाहेन दिगम्बरमतया नरसिंहपुरा स्वर्णो समानोत्ता। बहुस्व देवा १७०० गृहाणि तेषामात्मनोयानि कृतानि। भिण्डरका दिपुरेषु तदा च जस आदकप्रहाणां चतुरशीतिसहस्राधिकं तत्समेकम्।

(नागपुरीय लु कागच्छीय पट्टावली)

साहित्य नामक शोध-वर्ध मे किया है। कहते हैं कि 'मोतीमगरी' के महल में भामाशाह ने एक प्रीतिभोज या आयोजन रखा। इस अवसर पर सब सरदारों की पत्नियाँ पर दोनों में मोनियों के पुटियों परसे गये। भामाशाह ने कई बार-भोसवाल यात को भोज दिये और 'बावनी' (बावन गाँव) जिमायी। कई बार ग्राह भणों की 'चीरासियाँ' जिमायी।

अगरधद नाहटा के सग्रह म सुरक्षित एक गुटके में भामाशाह सबधी एक गीत मे अंतिम पद्य इस प्रकार मिलता है

‘भारमलोत तणो भर मण्डल, स सबुद प्रचल जय सतार।

सारग जगड वे सोभ रिवा, दीठी भामी जग दातार॥

इस प्रकार भामाशाह की दानवीरता उसक काल में ही प्रसिद्ध हो गयी थी। निर्माण काय

भामाशाह जिस प्रकार वीर और कुशल प्रशासक था, उसी प्रकार वह अच्छा निर्माता भी था। चित्तौड़ दुर्ग पर कवायद के मदान के पश्चिमी किनारे पर मेगजीन (तोपखाना) के भवन के सामने भामाशाह की हवेली स्थित थी। यह बाद में महाराणा सज्जनसिंह द्वारा कवायद का मदान बनवाते हुए तुड़वा दी गयी थी। अवश्य ही यह हवेली पूव में उसके पिता भारमल्ल की रही होगी परंतु भामाशाह द्वारा उसका विस्तार किया गया हो, तब वह उसके नाम से प्रसिद्ध हो गयी हो। कुछ समय पूव यहाँ ‘आर्किमोलोजिकल डिपार्टमेंट’ ने खुदाई कराई थी। इस विशाल भवन की बारादरी वाला भाग और बाहर खम्भे अब तक देखे जा सकते हैं।

चित्तौड़ दुर्ग की तलहटी में पाडनपोल के पास भामाशाह की ‘हस्तिशाला’ थी। चावड में महाराणा प्रताप के महलों के सामने नीचे सड़क के दूसरी ओर ‘भामाशाह की हवेली’ के खडहर आज भी विद्यमान हैं।

चावड के निकट जावर में भी महाराणा प्रताप कुछ काल पशत रहा। सुरक्षा और गोपनीयता की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण स्थान था। यहाँ पर भी मोतीबाजार के समीप ‘भामाशाह की हवेली’ होना बताया जाता है। जावरमाता का मंदिर जो मूल में ७ वीं शती में राजा शिलादित्य के काल में निर्मित हुआ था उस मालवा के शासक गिर्यासुदीन ने नष्ट कर दिया था। सन १८९३ ई में भामाशाह ने इस देवी मंदिर का भी जीर्णोद्धार कराया था।^१ कहते हैं कि घुलेवस्थित कसरियाजी या ऋषभदेव के मंदिर का जीर्णोद्धार भी भामाशाह ने कराया था।

भामाशाह का अंतिम काल उदयपुर में व्यतीत हुआ। यहाँ राजमहलों के पास उत्तर में गोमुखचंद्रमाजी के मंदिर के समीप एक स्थान 'दीवान जी की पोत' के नाम से प्रसिद्ध है, वह भामाशाह की हवेली ही बताया जाता है। एक पुरानी वही¹ में उल्लेख है कि महाराज की नीचे 'भामाशाह की बाड़ा' थी, इसकी स्थिति का सहो संकेत प्राप्त नहीं हो सका।

महाराणा अमरसिंह के काल में महलों के कुछ अंशों का निर्माण हुआ। इनके निर्माण में भामाशाह का योगदान रहा है। कविराज श्यामलदास ने लिखा है—'महाराणा अमरसिंह ने जिनका प्रधान भामाशाह घोसवाल कावडिया जात का महाजन बड़ा आदर और बहादुर था उसी के प्रधानों में महला का अवल दवाजा, जिसको 'बड़ी पोल' कहते हैं। और 'अमर महल', जो जनाने महलों के नजदीक है बनवाय है।'²

इस प्रकार भामाशाह ने स्थापत्य और कला के प्रति अपनी रुचि प्रकट की थी।

अंतिम दिन और मृत्यु

भामाशाह के अंतिम दिन संध्या की लम्बी दीड़ के बाद कुछ शांति से गुजरे। महाराणा प्रतापसिंह के काल में ही १५८६ ई. से मुगलों के मेवाड़ पर आक्रमण बनी गये थे। इस महाराणा की १५९७ ई० में मृत्यु हो गयी। महाराणा अमरसिंह के काल में पुन १६०० ई. में मुगल शाहशाह अफ़्ग़र ने बड़े शाहजादे सलीम को सेना सहित मेवाड़ पर भेजा। सम्भवत तब तक इस कमबोर प्रधान भामाशाह की मृत्यु हो चुकी थी। १५८६ से १६०० ई० के मध्यवर्ती शांति काल में राजधानी चावड और उदयपुर बदलती रही। फिर भी उदयपुर का निर्माण इस अवधि में तेजी से हुआ। भामाशाह इस भाग में अग्रणी था। ।

भामाशाह की मृत्यु ११ जनवरी १६०० ई० (भाद्र सुदि ११ संवत् १६५६) को हुई। उसके बाद उसका पुत्र जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने अपना प्रधान बनाया। मृत्यु के समय भामाशाह की आयु ५१ वर्ष ७ माह थी। अत्यंत संध-शील जीवन व्यतीत करने के कारण ही वह दीर्घायु प्राप्त नहीं कर सका। महाराणा प्रताप के साथ उसने भी एक स्वामिभक्त सेवक की तरह हर प्रकार की कठिनाई का सामना किया।

¹ कविराज श्यामलदास ने लिखा है—'इम (भामाशाह) ने मरने के एक दिन पहिले अपनी स्त्री को एक वही अपने हाथ की लिखी हुई दी और कहा कि इसमें

१ यह वही मरे भित्र डॉ० राजेन्द्रनाथ पुरोहित के निजी संग्रह में सुरक्षित है।

पुरोहित-संग्रह, वही सं ५, वि सं १७६४-८१, पृ २२०

२ बीरबिनोद, भाग ३, पृ २५१

"जा धन के हित नारि तजै पति,
 पूत तजै पितु शीलहि सोई ।
 भौई सौं भौई लरै रिपु से पुनि ,
 मित्रता मित्र तजै दुख जोई ।
 ता धन को बनिया ह्वै गिन्यो न ,
 दियो दुख देश के आरत होई ।
 स्वारथ अर्प्य तुम्हरोई है ।
 तुमरे सम और न या जग कोई ॥"

बाबू भारते-दु हरिश्चन्द्र

/

4- ताराचन्द

भारमल्ल बाबडिया के दो पुत्र हुए-भामाशाह और ताराचन्द । ताराचन्द भामाशाह का छोटा भाई था, । इसकी माता का नाम कपूर देवी था ।

भामाशाह के समान ताराचन्द भी वीर, साहसी, त्यागशील और नीति-निष्ठ गुण प्रशस्त था । इसके अतिरिक्त वह बला और साहित्य का अनुरागी और उत्तम प्राथम्यता भी था । वह महाराणा प्रताप के योग्य और विश्वसनीय अनुयायियों में से एक था ।

जन्म व बाल्यकाल

ताराचन्द भामाशाह से चार वर्ष छोटा था ।¹ वह भी अपने बड़े भाई भामाशाह की भांति महाराणा प्रताप का बालसखा, युवासाथी और योग्य सहायक था ।

हल्दीघाटी का युद्ध

मुगल बादशाह अकबर की विशाल सेना जिसका नेतृत्व आध्वर के राजा भगवन्तसिंह का पुत्र कुंवर मानसिंह बख्शवाहा कर रहा था, के साथ महाराणा प्रताप की सत्पति किन्तु आत्मविश्वास और देशप्रेम की धनी सेना ने साथ १८ जून १५७६ ई० के दिन खमनोर ग्राम के पास बनास नदी के तट पर घमासान युद्ध हुआ । यह युद्ध हल्दीघाटी के मुहाने पर हुआ था, इस घाटी में से निकलकर महाराणा प्रताप की सेना ने मुगल सेना पर आक्रमण किया था, युद्ध के बाद मेवाड़ की सेना इस घाटी में होकर वापिस लौट गई थी, इसी कारण यह इतिहास प्रसिद्ध युद्ध 'हल्दीघाटी का युद्ध' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

इस युद्ध में महाराणा प्रताप के समस्त वीर योद्धा और प्रमुख सरदार सम्मिलित हुए थे । राणा ने युद्ध से पूर्व अपनी सेना को पारम्परिक रीति से विभाजित और संगठित किया था जिसमें हरावन चंदावल, दक्षिण बाजू, धामबाजू और मध्य-ये पाँच विभाग रख गये थे । दाहिने बाजू का नेतृत्व राजा रामसाहसकर ने साथ भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द को सौंपा गया था । इनके

१ ताराचन्द स्मारक सप्त सादरी की विजिप्ति में लिखा है कि 'भामाशाह का जन्म वि सं १६०० में और ताराचन्द का जन्म वि सं १६०४ घाघाड गुप्त दसम की चित्तौड़गढ़ में हुआ था' परन्तु इसका कोई आधार नहीं होता । 'वीरविन्द' में भामाशाह के जन्म की तिथि वि सं १६०४ घाघाड गुप्त १० लिखी है । अतः ताराचन्द का जन्म इनके बाद ही होना चाहिये ।

साथ पाँच सौ सैनिक थे।¹ प्रताप की दृष्टि में ये दोनों वैश्यवधु पर्याप्त उच्च स्थान प्राप्त कर चुके थे अतः इन्हें सेना के एक पक्ष का नेतृत्व सौंपा गया था, इन वीरों को सम्मान देते हुए इन्हें हरावल के दक्षिण बाहु में रखा गया था।

युद्ध के प्रारम्भिक काल में ही महाराणा की सेना के दाहिने बाजू ने मुगल-सेना के बायें बाजू पर जोरदार हमला किया और उसे छिन्न भिन्न कर दिया। यह आक्रमण इतना प्रबल था कि मुगल सेना पीछे मुड़कर १०-१२ मील तक भागती रही। इसी समय मिहिरखा ने आकर बादशाह अकबर के आने की अपवाह फना दी, जिससे हताश मुगल सेना में पुनः शक्ति-संचार हुआ। अतः इस समय मुगल सेना की हार निश्चिन्त थी। मुगल सेना के बायें बाजू का नेतृत्व कर रहे सीकरी के शेखजादे और लूणकरण ने सय्यदल के साथ अपने स्थान से भागकर हरावल में से होते हुए अपनी सेना के दाहिने बाजू में जाकर शरण ली थी।

तब, मुगल सेना के बायें बाजू के नायकों के भाग जाने पर राजा रामशाह तब और भामाशाह ताराचन्द भी अपने स्थान से हट गये और वे प्रताप के पास मध्य में आ गये।² रामशाह तब के मारे जाने पर प्रताप पर मुगल सेना का दबाव बहुत बढ़ गया और वह चारों ओर से शत्रु दल से घिर गया। इसी बीच वह घायल हो गया। उसके घोड़े की टांग कट चुकी थी। ऐसी दशा में भी प्रताप युद्ध से हटना नहीं चाह रहा था। उसके प्राण सकट में देखकर बीदा माला ने उसका 'राज छत्र' छीन लिया तथा उसको ही प्रताप समझकर मुगल सैनिक उस पर टूट पड़े। इस समय "उसके (महाराणा प्रताप के) विश्वस्त अनुयायी ने लगाम पकड़कर उसका घोड़ा का मुँह घुमा दिया और वे अपने घायल सरदार को अपनी सेना के पीछे भाग से घाटी के उस पार सुरक्षापूर्वक ले गये।³ चूँकि इस समय भामाशाह और ताराचन्द ही प्रताप के इष्ट गिद थे अतः वे ही उसका विश्वस्त अनुयायी थे जो महाराणा प्रताप को युद्ध के क्षेत्र से बाहर सुरक्षित पहुँचाने में सफल हुए।

इस प्रकार ताराचन्द ने अपने भाई के साथ हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में वीरतापूर्वक लड़कर पुनः अपने स्वामी की रक्षा का दायित्व निभाया।

१ जदुनाथ सरकार, भारत का सय्य इतिहास, (हिंदी अनु.) पृ. ८९

२ जदुनाथ सरकार वही पृ. ८८-८९

३ जदुनाथ सरकार, वही पृ. ९२

इसके लिए भामाशाह जैसे विश्वसनीय व्यक्ति को 'प्रधान' बनाया उसी समय (सन १५७६ में) ताराचन्द को भी गोडवाड का हाकिम नियुक्त किया गया था। मारवाड की ओर से मुगलों के मेवाड पर आक्रमण रोकने के लिए नाकाबंदी करने की दृष्टि से गोडवाड की सुरक्षा का जिम्मा ताराचन्द जैसे वीर और कुशल व्यक्ति को सौंपना युक्तियुक्त था।

शाहजाद खान गोडवाड में ही दो वर्ष तक राक्षस करता रहा, परन्तु कु भलगढ पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। उस समय ताराचन्द ने ही उसका तीव्र प्रतिरोध किया। अंत में वि. स. १६३५ (१५७८ ई.) में शाहजाद खान कु भलगढ पर पूर्ण अधिकार करने में सफल हो सका वह भी धीरे धीरे और भक्तारी से। गोडवाड पर फिर भी वह पूर्ण आधिपत्य नहीं जमा सका, क्योंकि इसके बाद भी ताराचन्द ही गोडवाड का गवर्नर बना रहा। स. १६४२ में सादडी में उसके आदेश से जैन कवि हेमरतन ने गीरा बादल पद्मिनी चौपाई की रचना की थी।

मालवे को लूट

जून १५७८ ई० में कु भलगढ पर मुगल बादशाह अकबर के सेनानायक शाहजाद खान का अधिकार हो गया। उससे पूर्व ही महाराणा प्रतापसिंह पवतीय मार्ग से होकर राणपुर पहुँचे और वहाँ से ईडर राज्य के चूलिया नामक ग्राम में चल गये। महाराणा की आज्ञा से उसका प्रधान भामाशाह कु भलगढ की प्रजा को लेकर मालवे में रामपुरा की ओर गया। ताराचन्द भी उसके साथ था। वहाँ के राव दुर्गा ने उनकी बड़ी आवभगत की और सुरक्षा प्रदान की।^१

इसी वर्ष भामाशाह और ताराचन्द ने अकबर के सूबे 'मालवे' को लूटा तथा वहाँ से दण्डस्वरूप २५ लाख रुपये और बीस हजार अश्वारि वसूल की। यह सारा धन उन दोनों ने ले जाकर चूलिया में महाराणा प्रताप को भेंट किया।^२ इस धन से महाराणा प्रताप को पुनः सैन्य संगठित करने में अत्यंत सहायता मिली। इस सहयोग के लिए महाराणा ने इन दोनों भारीयों की बड़ी खातिर की।

कुछ समय बाद महाराणा प्रताप ने दिवेर के शाही घाटे पर आक्रमण किया। इस अवसर पर भामाशाह अपने साथियों के साथ सम्मिलित हुआ। ताराचन्द भी उसके साथ था। दोनों भारीयों ने बड़ी वीरता दिखाई। मुगल

१ वीरविनोद, भाग २, पृ १५७

२ वही पृ १५७

यानेश्वर सुल्तानखाने मारा गया। यान के अग्र्य लोग भाग गये। दिवेर की घाटी पर अधिकार करके गोडवाड़ की ओर जाने वाले रास्ते को महाराणा ने पूर्ण सुरक्षित बना लिया।

मालवे पर दूसरा अभियान

महाराणा प्रताप की आज्ञा से १५८० ई० के लगभग ताराचन्द मालवे में मद-सौर की ओर गया। वह दुबारा मालवे की हूटमा चाहता था, मुस्लिम सेनापति शाहवाजखा को इसकी सूचना मिलने पर उसने ताराचन्द का पीछा किया। शाहवाजखा तीतरोंद परगने से होते हुए चम्बल के किनारे ताराचन्द को घेर लिया। ताराचन्द वहाँ से युद्ध करता हुआ बसी के पास तक पहुँच गया, वहाँ वह घायल होने के कारण बेहोश होकर घाड़े से गिर पड़ा। परन्तु रणीजा (बसी) का राव साइनास देवडा उसे घायल और बेहोश अवस्था में वहाँ से उठाकर अपने किले में ले गया^१ जहाँ उसका उपचार कराया गया और वह स्वस्थ हो गया।

शाहवाजखा तो दूसरी ओर चला गया उसे बिना ताराचन्द को पकड़े लौट जाना पड़ा। जब ताराचन्द के घायल होने का समाचार महाराणा प्रताप ने सुना तो वह से चावड सेना सहित चला। उसने मालवे में दणोर आदि शहीदियों को नष्ट किया और वहाँ से दण्ड वसूल किया। फिर बसी जाकर साइनास के प्रति प्रताप ने बड़ी वृत्तज्ञता प्रकट की और ताराचन्द को अपने साथ लेकर पुनः चावड लौट आया। इससे प्रकट होता है कि राणा प्रताप को ताराचन्द के प्रति गहरा विश्वास, प्रामोदता और प्रेम था।

धर्म-प्रचार

ताराचन्द जनमत के अतन्त्र लुकागच्छ का अनुयायी था। उसने लुकागच्छ के प्रसार-प्रचार के लिए अपने जीवन में अनन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। लुकागच्छ की संहिता में लिखी 'पट्टावली' से ज्ञात होता है कि ताराचन्द ने सादरी के अतिरिक्त अनेक स्थान पुर और ग्रामों में पीपघशालाएँ आदि बनवाये। उसने अनन्त लोगों को प्रभु धन और प्रलीभन दकर अपने गण (गच्छे) में शामिल कर लिया था।^२

१ धीरविहीन भाग २ पृ १५८

२ "ताराचन्द्रेण सादरी नामकनगरं स्थापितं सर्वत्र पीपघशालादिकानि स्थानानि करिठानि स्थाने स्थान पुरे पुरे ग्रामे ग्रामे बहुजनैभ्यो धनं दायं दायं स्वगणीया वृत्ता ।" (नागपुरीय लुकागच्छ पट्टावली)।

कहते हैं ताराचंद ने लुकागच्छ के प्रचार के लिए बाइ बसर नहीं छोड़ी। श्री रत्नप्रभाकर पानपुष्पमाला फलोदी से स १९८५ में “श्री जन श्वेताम्बर मूर्तिपूजन गोडवाड और सादडी लुकामतियों के मतभेद का दिग्दर्शन” नामा पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में यह भी लिखा है—

‘जिस बावडी पर ताराचंद की बटख थी उसी बावडी पर ताराचंद, उनकी औरता, दासिया और घोड़ी की मूर्तियां बनाकर वि स १६४८ वैशाख कृष्ण ९ की प्रतिष्ठा करायी गयी थी। आज भी लुकामत वाले उन मूर्तियां की वेशर चंदन से पूजन व भगी रचना करते हैं। सदैव व ई जाकर दर्शन करत हैं। लोको के साधु साधवियां भी वहा दर्शन करने को जाते हैं। लुका में कोई दीक्षा हो तो पहले ताराचंद के वहां जात हैं। तपश्चर्या हो गाजा बाजा के साथ बहुत लोग वहा जाया करते हैं। इतना ही नहीं, ताराचंद की मूर्ति को लुका एक तीर्थ समझते हैं।’^१

इस प्रकार ताराचंद ने लुकागच्छ के प्रचार में बड़ा योगदान किया। उनके इन कार्यों से वह लुकागच्छ में बहुत प्रतिष्ठित माना जाने लगा। सादडी में उसका निवास स्थान इस गच्छ के अनुयायियों के लिए एक तीर्थ बन गया, यह भाव्यता वहा अब तक प्रचलित है।

कला और साहित्य के प्रति अभिरुचि

ताराचंद की स्थापत्य, संगीत और साहित्य की और गहरी अभिरुचि थी। उसने अनेक स्थानों पर लुकागच्छ की पीपधशालाओं का निर्माण कराया। गोडवाड का हाबिस बनन पर उसने सादडी में अपने रहने के भवन बनवाये जिसे ‘रावसा’ कहा जाता है। सादडी नगर की सुरक्षा के लिए परकोट का निर्माण कराया। इसानगर में उसने एक विशाल ‘जन उपाश्रय’ का भी निर्माण करवाया था जिसका अब श्वेत सगमरमर के पापाणों से जिरोंडार किया जा चुका है और जिस अब ‘महावीर भवन’ कहते हैं। इस उपाश्रय में ताराचंद की सगमरमर की बनी एक छत्री-विद्यमान है। सबसे महत्वपूर्ण उसके द्वारा अपने नाम पर बनवायी हुई ‘ताराबावडी’ नामक कलात्मक विशाल बावडी और बारादरी है। तीर्थस्व-रूप यह बावडी ताराचंद का अमर स्मारक बन गया है।^२

१ बीरशासन, १६ दिसंबर १९५२, पृ ७ पर उद्धृत।

२ श्रेयास श्रीताराबाविनामक तीर्थ चरित (सादडी के ताराबावडी का लेख स १६५४, पंक्ति १५)

ताराबावडी-

राजस्थान में विज्ञान वावडियों के बनने की बहुत प्राचीन परम्परा रही है। इनमें कई खण्ड होते थे। बात्रडिया कई मजिला में बनायी जाती थी। इन मजिला पर बैठना के स्थान भी होत। इन्हीं स्थानों पर निर्माता या समाज के प्रतिष्ठित लोग बठ कर वातानुबृत्त का आनन्द लेत थ। ग्रीष्मकाल में ये वावडिया सुखद जपवायु का स्थान होना थी। ताराचद के द्वारा निर्मित बावडी में भी उससे बठने का स्थान दशाव है।

ताराचद ने सादडी के बाहर एक बारादरी और बावडी बनवाई थी। यद्यपि इस बावडी का निर्माण काम बहुत कुछ ताराचद के बाल में ही हो चुका था पर तु इसको उसके पुत्र 'सुरताण' ने पूरा करवाया था। इसकी प्रतिष्ठा स १६५४ (शक संवत् १५२०) वैशाख कृष्ण २ गुरुवार के दिन हुई थी। इस अवसर पर एक गालीस बावडी के साथी घर दीवार में लगाया गया था। इस लेख से ज्ञात होता है कि ताराचद और उसके साथ सती होने वाली ग्यारह स्त्रियों के पुण्य हेतु बावडी-रूप इस तीर्थ की ताराचद के पुत्र सुरताण द्वारा प्रतिष्ठा करायी गई थी। कुछ समय पूर्व बावडी का जीर्णोद्धार करान समय इस लेख को ब्रह्मा से हटा दिया गया है। इस लेख की छाप के आधार पर रामवल्लभ सोमानी ने इसे प्रकाशित कराया था।^१

यह बावडी पांच मजिल में निर्मित है। इसमें दो और से नीचे उतरने के लिए साडिया बनी हुई हैं जो नीचे जाकर एक हो जाती हैं। दोनों घर की सीडिया के बीच में दो मजिलों में दो 'महामंडप' बने हुए हैं। यह बावडी स्थान-पत्य की उ कृष्ट नमूना है। बावडी के ऊपर ताराचद की छत्री बनी हुई है। बावडी पर विशाल रहट लगा हुआ है जिसके द्वारा समीपवर्ती बाडी में जल-निचने किया जाता था। अब इस रहट वाले स्थान को दिन की शीटो के भवन से ढक दिया गया है। पानी की गलियाँ अब तक मौजूद हैं। बावडी के निर्माण में स्थानीय मटमले लाल पत्थर का ही उपयोग हुआ है। यद्यपि पहले यह बावडी सादडी नगर में बाहर थी परंतु अब नगर के अंदर आ गयी है।

ताराचद संगीत का अच्छा पारखी था। मुगला की शली पर उसका दरबार ठाट बाट स लगा करता था जिसमें संगीत और नृत्य गीत आदि

के आयोजन भी हुआ करते थे। उसके आश्रय में कई संगीतज्ञ गायक और नतक और नतकिया रहते थे। उसके आश्रयण और व्यक्तित्व प्रभाव के कारण ही उसकी मृत्यु के बाद उसकी बिना म बठकर छ गायिकाया, एक गायक और उस की स्त्री ने अपने प्राणोत्सग किये थे। यह उस कला प्रेमी और कला के उत्तर-मत्ता आश्रयदाता के लिए विश्व में सबसे बड़ी श्रद्धांजलि थी, जिसे उन कलानु-नुरागियो ने अपने प्राणों की आहुतिया देकर पूरा की थी।

ताराचन्द साहित्य प्रेमी था। मेवाड मुगल षष्य के उस भीषणकाल में भी साहित्य और कलाओं की प्रोत्साहन देना एक महत्वपूर्ण धर्म था। अनेक कवि, साहित्यकार उदार हृदय से उसके यहाँ आत, ठहरते आश्रय पाते अपनी रचनाएँ करते, उसे सुनाते और योग्यतानुसार पुरस्कार प्राप्त करते थे। उसके बाल में सादडी में हेमरतन नामक एक जन मुनि का निवास रहा, वह उच्चशक्ति का कवि भी था। वह श्वेताम्बर पुनमिया गच्छ का वाचक था। उसका सपक ताराचन्द के साथ होता स्वाभाविक था। ताराचन्द की भवाड के राजवंश के प्रतिभूट आस्था थी। उस बाल में चित्तौड की पद्मिनी की कथा राजस्थान और उसके सीमावर्ती प्रदेशों मालवा और गुजरात में सत्र विन्यात थी। न केवल यही अपितु मुद्गर पूष में भी उसकी कथा प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। रानी पद्मिनी के त्याग और बलिदान की गाथा को आधार बनाकर ह। मलिक माहम्मद जायसी ने दोहा चौपाई छंदों में 'पदभावत की रचना की थी। ताराचन्द ने हेमरतन सूरि की कवित्वशक्ति से प्रभावित होकर उससे पद्मिनी सबंधी गौरवपूर्ण कथानक की राजस्थानी काव्य वाणी में निबद्ध करने का अनुरोध किया। तदनुसार कवि हेमरतनसूरि ने आषण 'गुबल ५ वि स १६८५ को सादडी में इस सुंदर रचना को पूरा किया और इस कृति का नाम रखा गया 'गोरा-बानल पद्मिनी चौपाई'।^१ इसमें गोरा बानल की स्वामाभक्ति और उसके द्वारा चित्तौड के गौरव की रक्षा हेतु अपने बलिदान का वणन अोजपूर्ण शब्दा में किया गया है। इसकी रचना सादडी नगर में की गई उस समय मेवाड के महागणा प्रताप का गाडवाड पर आधिपत्य था। उसके शौर्य और वीरता त्याग के काय दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे।

इस प्रकार ताराचन्द को संगीत स्थापय और साहित्य से अत्यंत अनुगम

१ इस ग्रंथ की मूल हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर शाखा के देराश्री संग्रह में विद्यमान है, जिसके आधार पर इसका रा प्रा वि प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशन किया जा चुका है।

था। वह इन ललित कलाओं की विशिष्ट सूक्ष्मतम जानकारी भी रखता था तथा कलाकारों और साहित्यकारों को प्रोत्साहन व आश्रय प्रदान किया करता था।

मृत्यु

ताराचन्द की मृत्यु वशाख कृष्ण ९, वि स १६४८ (१५९१ ई) में हुई थी। महाराणा प्रताप की मृत्यु इसके छ वष बाद वि स १६५३ (१५९७ ई) में एवं भामाशाह की मृत्यु वि स १६५६ (१६०० ई) हुई थी। इस प्रकार बहुत कम आयु में ही ताराचन्द की मृत्यु होना ज्ञात होता है।

साल्डी^१ ताराचन्द की छत्रों के पास उसकी चार स्त्रियों की मूर्तियाँ हैं। इसके अनिरिक्त एक खवास, ६ गायिकाएँ एक गवया और एक गवया की स्त्री की मूर्तियाँ भी जुड़ी हुई हैं। इन पर वि स १६४८ वशाख वदि ९ के लेख हैं।^१

मुन्नी देवीप्रसाद ने भी आर्कियोलोजिकल सर्वे के एक दौर के अवसर पर सादवी के बाहर इस सतीबाड को देखा था जिसका उन्होंने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है।

‘श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक गोडवाड और सादवी लु कामतियों के मत भेद का निदशन^२ नामक पुस्तक में भी लिखा है जिस बावडी पर ताराचन्द की बैठक थी उसी बावडी पर ताराचन्द उनकी औरता दासियों और घोड़ी की मूर्तियाँ बनाकर वि स १६४८ वशाख कृष्ण ९ को प्रतिष्ठा करवायी गयी थी।

इसमें ज्ञात होता है कि पुराने साल्डी नगर के बाहर ताराचन्द के द्वारा बनवायी हुई बावडी के ऊपर ही उसकी दाहक्रिया की गयी थी, वही उसका स्मारक स्वरूप ‘छत्रो’ और सतिया के मूर्ति उत्कीर्ण शिला-पट्ट लगवाये गये थे। ये शिलापट्ट अब छत्रो का जीर्णोद्धार करते समय वहाँ से हटा दिये गये हैं, अतः उन पर अबित स १६४८ के लेखों का भी पता नहीं चलता। उनके स्थान पर सन् २०१३ चत्र सुनि १० शुक्रवार को ताराचन्द की छत्रों के अंदर सगमरमर

१ सरस्वती, भाग १८, सा २, पृ ९७ रामवल्लभ सोमानी, ऐतिहासिक शोध-संग्रह, पृ ६९

२ यह ग्रंथ ‘श्री रत्नप्रभाव रत्नपुष्पमाला’ के अंतर्गत फलीदी (मारवाड) से स १९८५ में प्रकाशित हुआ था।

को एक बड़ी शिला, जिस पर मूर्तियाँ और लेख अंकित हैं स्थापित की गई है। इस शिला पर दो बतारा में मूर्तियों की खुदाई हुई है। ऊपर की पंक्ति में ताराचन्द की अश्वारूढ़ मूर्ति के सामने हाथ जोड़े हुए पांच पत्तियों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इनके नीचे तीन पत्तियों में लेख खुदा है। उसके नीचे मूर्तियों की दूसरी बतारा में विभिन्न भगिमाओं में नृत्य करती हुई छ गणिरामा (गतिरामों) की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इसके नीचे लेख के शेष भाग की चार पत्तियाँ अंकित हैं। इस लेख से पता होता है कि भारमल और उसके पुत्र ताराचन्द को ठाठुर कहा जाता था। भारमल की पत्नी भवाड़ी थी जिसका नाम इसी बावड़ी के प्रतिष्ठा लेख में 'बपू रदेवी' दिया है। ताराचन्द के स्वर्गारोहण पर उसकी ५ पत्नियाँ यहाँ सती हुई थीं, जिनके नाम तारादे त्रिजवणदे, अमूरवदे सामागने और बीरागदे दि। गये हैं। जो खवासन सती हुई थी उसका नाम केतकी दिया है। इनके साथ छ गणिकाएँ (ननकियाँ) भी चिता पर आरुढ़ हुई थीं इनके नाम य- कामरेखा, गुणसूत्रदा, वसन्तमाला पूनमाला बीकीला और माहनी। इस लेख में उल्लेख है कि ताराचन्द की मृत्यु वि.स. १६४८ वशाख कृष्ण ८(९) मंगलवार को हुई थी तथा इस छत्री का निर्माण स. १६८९ वातिक सुदि ५ सामवार को पूरा हुआ था तथा छत्री का जीर्णोद्धार और नवीन मूर्तियों की स्थापना सन् २०१३ चत्र सुदि १०, शुक्रवार को हुई थी।^१ गांधी और उसकी स्त्री की मूर्तियाँ इसमें नहीं हैं। ताराचन्द की छत्री को आजकल ताराचन्द का मंदिर भी कहते हैं।^२

ताराबावड़ी के शिलालेख (स. १६५४) से भी पता चलता है कि ताराचन्द के साथ ग्यारह स्त्रियाँ सती हुई थी।^३

उसकी मृत्यु के समय में बनाया जाता है कि- 'ताराचन्द गोडवाड का हाकिम था, वह बड़े अमीराना ठाठ से सादर में रहता था। उसने बीतू नाम की एक खवासन घर में रख छोड़ी थी। वह बहुत सुंदर थी। महाराणा शतापतिह के

१ यह लेख- देखें परिशिष्ट। इसका पृथक् से फोटोग्राफ भी मुद्रित है।

२ इस मंदिर के सम्बन्ध में विशेष धार्मिक मान्यता प्रचलित है। कावेडिया परिवारों का यह एक ही मंदिर है। यहाँ पर इनके बच्चों के मुंडन कराने (झड़ला उतारने) का रिवाज है। विवाह के बाद यहाँ पर जात दी जाता है। कई की यहाँ का 'अपगत पडता है' उसे स्वप्न आदि में दर्शन लेना भिन्नत पूरी होना आदि। कहते हैं ताराचन्द की दिव्यात्मा सादरी नगर में घूमती रहती है इसी से कभी यहाँ डकतो (घाड़ायत) नहीं पड़ी।

३ ताराचन्दस्य एकादश सतीसहितसप्तपुण्याथ (ताराबावड़ी का लेख, स. १६५४, पंक्ति १४)

वटे भ्रमरसिंह ने उसकी इस सुदरता का वणन सुनकर उसे मांगा, तो ताराचंद ने उसे न दिया। इस पर महाराणा ने उसे उदयपुर बुलवा कर मरवा डाला। ननूराम सेवक उसका गवया था। वह उसकी पगड़ी लेकर सादही में आया। पगड़ी के साथ उसकी चारों ओरतें, खवासन कीतू, ६ गायिकाएँ, ननूराम और उनकी औरत, ताराचंद की एक पूफी, उसका पति और एक मुसलमान अलिया कुल २० आत्मी चिता बनाकर जल मरे। २१ वीं एक घोड़ों भी थी।^१

परन्तु यह विचार इतिहास-विरुद्ध है। ताराचंद की मृत्यु के समय महाराणा प्रताप का शासनकाल था अतः महाराणा भ्रमरसिंह द्वारा कीतू नामक खवासन को चाहने और उसे न देने पर उदयपुर बुलवाकर ताराचंद को मरवा डालने का कथानक कपोलकल्पित बात होता है।

सादही के ताराबाबड़ी के स १६५४ के प्रतिष्ठा-शिलालेख को, जिसे ताराचंद के पुत्र सुरताण ने सुनवाया था से भी पता होता है कि उस समय तक ताराचंद की मृत्यु हो चुकी थी। यह शिलालेख महाराणा भ्रमरसिंह की गद्दीन-शीनी के केवल तीस माह बाद का है। अतः महाराणा भ्रमरसिंह के गद्दी पर बैठने से पूर्व ही ताराचंद की मृत्यु होना प्रमाणित होता है।

ताराचंद की मृत्यु के समय भामाशाह मथाड राय के 'प्रधान' के पद पर आसीन था और महाराणा भ्रमरसिंह के प्रारम्भिक काल तक इसी पद पर बना रहा। वह अपने भाई के अपमान और मार डाले जान को बस सहन कर सकता था ?

ताराचंद का मृत्यु के बाद भी कुछ पीढ़ियों तक उनके वंशज 'ठाकुर-साहब' ही कहलाते रहे अतः प्रतीत होता है कि उनके वंशजों के पास कुछ काल पय त गोन्वाड की हाकिमी यथावत् चलता रही।

ताराचंद और साहसी योद्धा, कुशल प्रशासक और उत्तम प्रबंधक था। उसने अनेक सैनिक अभियानों का संचालन किया, गाढ़वाड की सुरक्षा और शासन प्रबन्ध करते हुए मेवाड की रक्षा में अपूर्व सहयोग दिया। इसके अतिरिक्त उसने कला व माहित्य की संरक्षण देकर उनको उत्थिति में योगदान दिया। मेवाड के इतिहास में उसका स्थान महत्वपूर्ण और चिरस्थायी रहेगा इसमें कोई सन्देह नहीं।

१ मुन्नीजी द्वारा दिया गया यह विवरण वीरशासन क १६ दिमम्बर १९५२ के अंक में पृ ७ पर उद्धृत हुआ है।

५. भामाशाह के वंशज

जीवाशाह

‘प्रधान’ पद पाना

भामाशाह का पुत्र ‘जीवाशाह’ हुआ। उसका जन्म का नाम ‘जीवराज’ मिलता है। महाराणा अमरसिंह के शासनकाल में प्रारम्भिक ढाई तान वर्षों तक भामाशाह ही ‘प्रधान’ रहा। भामाशाह की मृत्यु माघ शुक्ल ११ से १६५६ (जनवरी १६०० ई.) को हुई। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने ‘प्रधान’ का पद प्रदान किया।^१ वह भी विश्वसनीय और योग्य व्यक्ति था।

सैन्य-संचालन में सहयोग

डा. ओम्का ने लिखा है- वह अपनी पिता की लिखी हुई वही के अनुसार जगह-जगह से खजाना निकाल कर लड़ाई का खर्च चलता रहा।^२

बादशाह जहागीर से भेंट

महाराणा अमरसिंह के समय फरवरी १६१५ ई. में मुगलानों के साथ संधि हो गयी। यह संधि पूर्ण सम्मानजनक शर्तों के आधार पर की गई और मवाड़ के प्राचीन गौरव को अक्षुण्ण रखा। उस संधि के सम्पन्न होने के बाद शाहजादा खुरम के साथ कुवर कणसिंह अजमेर में मुगल बादशाह जहागीर के दरबार में उपस्थित हुआ। उस समय खुरम की सिफारिश से बादशाह ने कणसिंह को दाहिनी ओर की पक्ति में सबसे प्रथम खड़ा रहने की आज्ञा दी। फिर उसको खिलसत और एक जडाऊ तलवार प्रदान की। इस अवसर पर कुवर कणसिंह के साथ प्रधान जीवाशाह भी अजमेर गया था।^३

जीवाशाह की मृत्यु महाराणा कणसिंह के शासनकाल में हुई वह मृत्यु पश्चात् ‘प्रधान’ बना रहा। महाराणा कणसिंह ने भी उसे अच्छा सम्मान दिया।

१ वीरविनाद, भाग २ पृ. २५१

२ डा. ओम्का राजपूताने का इतिहास, जिल्द २ पृ. १३०३

३ वीरविनाद भाग २ पृ. २५१, ओम्का- ‘राजपूताने का इतिहास’, जिल्द २, पृ. १३०४

अक्षयराज कावडिया

परिवार

मेवाड़ की कृपाता, बहियो और गीता म इसका नाम 'प्रखराज' दिया है । वह भामाशाह का पौत्र और जाधराज (या जीवाशाह) का पुत्र था । प्रखराज की माता 'मोहोनी (समवनया 'मोहोनी' या माहुनी) थी जो कमचंदकी पुत्री थी । यह वही कमचंद था जो 'कर्माशाह (कर्मसिंह) के नाम से प्रसिद्ध रहा और वह राणा रत्नसिंह (द्वितीय) के कान में मंत्री के पद पर रहा ।¹ इस प्रकार प्रखराज न मातृ और पितृ पक्ष की ओर से कुलीनता प्राप्त की थी और वह उनसे 'सवाया' निरता ।²

राज्य-सम्मान

महाराणा प्रमदसिंह ने अक्षयराज को देव एवं प्रसन्न होकर उसे और उसने कुटुम्बियों को रेशमी और जरीन वस्त्र उपहार म दिये ।³

1. शत्रु जयन्तीय (सौराष्ट्र में पातोनाणा के पास) से मिले एक शिनालेख में कर्माशाह द्वारा शत्रु जय का पुनश्चकार कर नवीन प्रतिष्ठा कराये जाने का विवरण प्राप्त होता है । इस लेख में इससे कमज का ध्यान भी दिया है । (एशियाटिका इण्डिका भाग २, पृ. ४७-४८)

२. अक्षयराज का वस्त्र-परिचय एक प्राचीन गान में इस प्रकार मिलता है-

'सखो दवे पछ उजालो, सिरदार सवायो ।

जठ हयो जीवा बरे, जग सोमी जायो ॥

राणी धा मोहोनी धरा, जिए बूछ रहायो ।

दादा जिएरो भाममाह, जिए दात बोहायो ॥

नानो जिएरो कमचंद कलि बन्त बहायो ।

जिए पैतीमी भाकिमो, धाने जुग धायो ॥

धारे बहना धारंग नीमाए बजायो ।

धो मगलो उजवाला, भागीरथ धायो ॥'

(प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग II, पृ. ४५)

३. 'होती राणा प्रमदसिंह, दाने मुछ पायो ।

पाट पटकर सम्भरा, परि गू पहरायो ॥ (उरी पृ. ४६)

प्रधान का पद

महाराणा अमरसिंह की मृत्यु (२६ जनवरी १६२० ई०) के बाद उसका पुत्र कर्णसिंह उदयपुर की गद्दी पर बैठा। मात्र १६२८ ई० में उसका देहान्त हो गया। उसने ८ वर्ष और ८ दिन राज्य किया। महाराणा कर्णसिंह ने अखराज को अपना प्रधान (मन्त्री) बनाया। उस सभी सामन्त चाहते थे। इस अवसर पर जब वह अपने घर आया तब उसका पत्नी ने भणि-मुक्तामो के घाल भर कर उसकी बधाया (स्वागत किया)।^१ तब से वह महाराणा जगतसिंह के बाल तब इस पद पर बना रहा।

डूंगरपुर पर आक्रमण

अखराज के कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण उसका डूंगरपुर पर आक्रमण और उसकी विजय कर पुनः उदयपुर लौटना है। उसके इस अभियान का संक्षिप्त विवरण जगन्नाथराय प्रशस्ति, राजप्रशस्ति एवं अमरकाव्य में मिलता है। परन्तु इसका विस्तृत विवरण 'विदुर' नामक चारण कवि द्वारा विरचित समकालीन एक गीत में दिया गया है।

डूंगरपुर का राजवंश मेवाड़ के राजवंश से सम्बंधित था। अतः जब १५७६ ई० में डूंगरपुर के रावल भासकरण ने मुगल बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली तो इस समाचार की सुनकर महाराणा प्रतापसिंह को क्रोध आया और डूंगरपुर पर आधिपत्य करने के लिए १५७८ ई० के लगभग उसने रावल भाण सारंगवान (बानोड बानो का पूवज) को सैन्य सहित भेजा। सोम नदी के किनारे दोनों पक्षा में युद्ध हुआ। इसमें रावल भाग स्वयं बहुत घायल हो गया और उसका काका कर्णसिंह मारा गया। इसमें बागडिये चौहानों ने बहुत वारता दिखाई, परन्तु वे हारकर भाग गये। डूंगरपुर के शासक ने महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

महाराणा अमरसिंह और मुगल बादशाह जहांगीर के मध्य ५ फरवरी १६१५ ई० की संधि हो गयी। इस संधि के बाद ११ मई १६१५ को एक فرمان द्वारा बादशाह ने मेवाड़ के सारे प्रदेश, चित्तौड़ का किला तथा मेवाड़ के अधीन पूव के सारे इलाक़ तथा फूर्निया रतलाम बासवाड़ा, डूंगरपुर, जीरन, १ दे परमानो करणसिंह, भुजभार भठायो।

भूप भूपा ठाकरा सगला मन भायो ॥

बिणता मिणता मोतिया, भरि घाल बघायो।

साह घरे भायो सभा, दणियर, दरसायो ॥

(वही, पृ ४६)

नीमत्र, अरनोद आदि बाहरके परगने भी कुबरकणसिंह को जागीर में दे दिये।¹

महाराणा जगत्सिंह ने राजगद्दी प्राप्त करते ही उसी वर्ष डूगरपुर पर अधिकार करने के लिए अपने मंत्री अक्षयराज को सेना सहित भेजा। इसके कारण की भीमासा करते हुए डा. गीरीशकर हीराचंद ओझा का मत है- "महाराणा प्रतापसिंह के समय से ही डूगरपुर बादशाही अधीनता में चला गया था, जिससे वहां के रावल उदयपुर की अधीनता नहीं मानते थे। इसलिए महाराणा ने अपने मंत्री अक्षयराज को सेना देकर रावल पूजा पर, जो उस समय डूगरपुर का स्वामी था भेजा।"²

महाराणा कणसिंह का राज्यकाल प्रायः अपने उजड़े हुए राज्य की भावाव करने में ही व्यतीत हुआ। इसलिए उसने डूगरपुर आदि से कोई छेड़-छाड़ नहीं की परन्तु उसके पुत्र महाराणा जगत्सिंह ने शाही फरमान के अनुसार डूगरपुर बासवाडा और देवतिया को अपने अधीन करने की चेष्टा की, किन्तु उक्त राज्यों ने मेवाड़ के अधीन रहना नापसंद किया। इस अवसर पर महाराणा ने अपने मंत्री अक्षयराज कावडिया को सेना सहित डूगरपुर पर भेजा।³

इस राजनैतिक कारण के अतिरिक्त तात्कालिक कारण भी थे, जिनसे क्रुद्ध होकर महाराणा ने रावल पूजा के विरुद्ध सेना भेजी। इसका संकेत 'विदुर' कृत एक प्राचीन गीत में इस प्रकार मिलता है। जब महाराणा कणसिंह का देहांत हुआ और उसका पुत्र जगत्सिंह राजगद्दी पर बैठा तब रिवाज के अनुसार मेवाड़ के सभी सामंत एवं अधीन राजा राजतिलक के अवसर पर राजदरबार में उपस्थित हुए और नजराना पेश किया। इस अवसर पर स्वयं डूगरपुर के रावल पूजा ने महाराणा के विरुद्ध ऐसे आचरण किये जिससे महाराणा का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। इस संबंध में विदुर ने अपने राजस्थानी गीत में निम्न पांच बातों का उल्लेख किया है-

- १ रावल पूजा सभी सामंतों के आने के बाद उन्मयपुर आया।
- २ महाराणा जगत्सिंह के राजतिलक के समय भेंट करने के लिए मणि माणक हीरे, रत्नादि कुछ भी साथ नहीं लाया।
- ३ उसने उदयपुर नगर के पास पूँच कर नक्कारे बजवाए। (नक्कारे का बज-

१ यह फरमान 'वीरविनोद' भाग २ पृ. २३९ से २४९ पर छपा है।

२ डॉ. ओझा 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द २ पृ. ८३३

३ डॉ. ओझा, 'डूगरपुर राज्य का इतिहास' पृ. १०८

वाना उसकी स्वतंत्र शासक के रूप में सत्ता को प्रकट करने के लिए था) ।

४ राणा की सभा में रावल पूजा रीना बाने हो अभिमानपूर्वक सामने आकर बैठ गया ।

५ रावल पूजा राणा की सभा में से शीघ्र उठकर रवाना हो गया ।^१

राणा ने उसके इस प्रकार के व्यवहार को उद्दण्डतापूर्ण माना और प्रोक्षित होकर उससे 'दण्ड' की मांग की । वह राजद्वार तक भी नहीं पहुँचा था कि उससे कहा गया कि वह दण्ड दिये बिना अपने स्थान से गुरपुर नहीं जा सकता । इस पर पूजा ने क्रुद्ध होकर पुनः कहलाया— मेरा प्राप्त अलग है । रावल और राणा वश दोनों का एक ही घर है । फिर भी हमारा वश बड़ा माना जाता है । यदि हमसे कोई बुरा काय हुआ हो तो उस पर विचार पूर्वक जाँच करें । अपने ही घर में मनमाना करना यथ है । दण्ड लेना ही तो साम नदी पार कर मरे देश में आते तब पता चल जावेगा । यह कहलाकर पूजा ने विदा के साथ नक्कारे बजवाये और रवाना हो गया ।

इस आचरण से स्पष्ट हो गया कि गुरपुर का शासक मुगलों से स्वतंत्र मनसब प्राप्त करके अपने को मेवाड़ की प्रभुसत्ता में पृथक् मान बैठा था ।

महाराणा ने अपनी सेना गुरपुर पर अधिकार करने के लिए सुमुज्जित कर भजी । उसे आदेश दिया गया कि वह 'नेफमागर' पर अपना घाना कायम करे और रावल से १२ वष का दण्ड वसूल करे ।

उस समय योद्धा ऋतु थी । रावल भी इस प्रत्याशित आक्रमण से परिचित था । उसने अपने राज्य के मांग में आन वाले गावों को खाली करवा दिया । उसकी प्रजा पहाड़ों और जंगलों में जा बसा ।

राणा की सेना में गजदारोही अश्वारोही और पदल सैनिक थे । इस अभियान का नेतृत्व महाराणा जगतसिंह ने अम्बरराज कावडिया की सौपा । उसके साथ भेजी हुई सेना में शकतावत छुड़ावत सोनगरे सिधल सोलरी राठीड और चौहान वीर थे । इस सेना में कई प्रमुख सरदार भी साथ भेजे गये जिनमें जमसेनका पुत्र रामसिंह (मुड्डा, जोड़ा से हाथी का मारने वाला) गोपालदास का पुत्र किसानदास रावल मानसिंह का भाई शामसिंह का पुत्र माधोसिंह (महाराणा की चित्तौड़ पर स्थपित करने वाला) इश्वरदान (दूदा का बखज), राठीड सावलदास नरहरदास का पुत्र जसवंतसिंह, परमार इन्द्रमान, मानसिंह जस

^१ प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ११ पृ ५३ ५४ (पद्य में ८)

व तसिंह बछवाहा किसनसिंह का पुत्र वेरीनाल (वेरीसि), भाटी उदा(उन्नेतसिंह), राठौर मुन्दरदास उल्लेखनीय थे ।

अक्षयराज की सेना के 'हरावता' (सेना के अग्रभाग) ने माग में अनेक स्थानों को उजाड़ दिया और घाना पर बढ्ता कर लिया । फिर वह सोम नदी के किनारे पहुँचा । इसका समाचार सुनकर रावल पूजा और उमका वागड प्रांत चिंतित हो गया । बोई भी उसका साथ देने का तैयार नहीं हुआ । केवल चौहान सूजा (मूरजमल-सूयमल्ल) अपने गिने चुने चौहान वीरों के साथ रावल पूजा का पक्ष लेकर महाराणा की सेना का मुकाबला करने सोम नदी के तट पर पहुँचा । जब जब डूगरपुर पर बाहरी आक्रमण हुआ तब-तब वहाँ के चौहानों ने रावल का साथ दिया और वे आगे बढ़कर शत्रु-सेना से लड़े । इस बार भी जब राणा की सेना ने आक्रमण किया तो चौहान सूजा आगे बढ़ा । युद्ध मलालसिंह का पुत्र मारा गया । जब सूजा ने सुना कि उसके पक्ष का पृथ्वीराज युद्ध में मारा गया है, तब वह स्वयं आगे बढ़ा । युद्ध में रावल मानसिंह के साथ सूजा का सामना हुआ । रावल मानसिंह ने सूजा की छाती में कटार भोंक दी । पृथ्वी पर गिरते गिरते भी सूजा ने दाव लगाकर दामोदर नामक व्यक्ति को मार गिराया । सूजा के मरने के बाद उसके पाँच-दस वीरों ने सामना किया वे सभी मारे गये ।

सोम नदी पर हुए इस युद्ध में विजयी होकर महाराणा की सेना आगे बढ़ी। डूगरपुर पहुँच कर उसे चारा और से चेर लिया । अक्षयराज ने अच्छा सैन्य संचालन किया । रावल पूजा भी नौली नामक स्थान पर आ डटा । उस समय अक्षयराज की बंदूक की गोली से पूजा के सिर पर आघात हुआ । वह ठिक नहीं सका और भाग खड़ा हुआ । वह भागते-मदद के लिए मुगल बादशाह की सेवा में चला गया । शत्रुदल के कुछ वीरों ने सामना किया पर वे सब शीघ्र ही मार डाले गये ।

मेवाड़ की सेना ने डूगरपुर पर अधिकार कर लिया । डूगरपुर को लूटा गया, वहाँ के दरवाजे बाजार ऊँचे भवन गिरा दिये गये, मकानों में आग लगा दी गई खम्भा को काला कर दिया गया, बाग-बगीचे-वृक्ष नष्ट कर दिये गये । इसके बाद महाराणा की सेना ने 'मेक्सगर' पर डेरा डालकर विश्राम किया ।

इसके बाद महाराणा का मंत्री अक्षयराज डू गरपुर के प्रदेश को अपने अधीन कर वापिस उदयपुर लौट आया । १

रणछोड भट्ट ने अमरकाव्य से लिखा है कि यह आक्रमण सन् १६८५ (१६२८ ई) में किया गया था । इस अवसर पर रावल पूजा अपने सोगा के साथ पहाडो में भाग गया । अखराज की सेना न डू गरपुर को लूटा और रावल के महल में लगा हुआ चन्दन का गोखडा गिराकर उसे साथ ले लिया । ऐसा ही वणन संक्षेप में 'राजप्रशस्ति' और 'अण नाथराय प्रशस्ति' में भी मिलता है । २

१ डू गरपुर अभियान का यह वणन विदुर नामक चारण कवि ने भूलणा नामक २५ पद्यों में लिखा है । इस गीत की प्रति का लिपिकाल स १७७१ आश्विन शुक्ला दिया है । लिपिकार का नाम 'रायचंद पचोली' लिखा है । यह प्रति रविशंकर तैराथी (वनडा) के संग्रह में उपलब्ध हुई थी । जिसका सम्पादन प्रकाशन 'प्राचीन राजस्थानी गीत' भाग ११, पृ ४२-७५ पर कविराव मोहनसिंह और सावलदान भाशिया ने किया है ।

२ (घ) अगत्सिहानया मत्री अखैराजो बलाधित ।
स डू गरपुरप्राप्त पु जानामाय रावल ।
पलायित पातित तच्चन्दनस्य गवाक्षक ।
सु टन डू गरपुरे वृत लोकरल तत ॥

(रा प्र संग ५/१८-१९)

(घा) शते भवति षोडशेऽप्रयुते पचकाशीति समिताब्दे ।
अखराज मत्री वणिक स डू गरपुरे गत ॥
प्रबलसयमालावृत पलायनपरोऽभूवत् ।
तदनु पुञ्जनामा नृपमर्त्यविक्रम ॥
अखैराजवाक्प्रेरितभटा युधि विखण्डिता ।
प्रबलरावलस्योदभगा विलुण्ठनमहोक्तम् ॥
पुरवरस्य लोकरल सचन्दनगवाक्षक ।
सकलमुदवेस वेगत विपघातो जगत्सिंह ॥
सत्पाण्जनतिमुख तदनु तस्य चक्रे चिरम् ।

...

॥

(अमरकाव्यम् २०।५-१९)*

‘मन्त्री’ अक्षयराज कावडिया की इस सफलता से महाराणा जगत्सिंह बहुत प्रसन्न हुआ। संभवतः अक्षयराज का जीवन मृत्युपश्चात् ‘मन्त्री’ पद पर कायम रहा।

भामाशाह के परवर्ती वंशजों को राज्य

सम्मान और जातीय सम्मान

भारमल्ल, भामाशाह, जीवाशाह और अक्षयराज - इस प्रकार एक ही वंश की चार पीढ़ियाँ ने मेवाड़ राज्य की महानु मेवा की। विशेषकर भामाशाह की सेवाओं से मेवाड़ में युग परिवर्तन हुआ। चेतना की लहर प्रवाहित हुई और महाराणा प्रताप की अपने सघन को जारी रखने तथा शांतिकाल में मेवाड़ में व्यवस्था स्थापित करने में अदभुत सहायता मिली। कविराजा श्यामलदास ने ठीक ही लिखा है-

“भामाशाह के नाम से भोमवाल जाति के हर एक महाजन को घमण होता है, जिस तरह वस्तुपाल, तेजपाल जो अहलवाड़े के सोलखी राजाओं के प्रधान थे, और जिन्होंने भावू पर जन के मंदिर बनवाये, वैसा ही पराक्रमी और नामो भामाशाह को भी जानना चाहिये, जिसकी नौकरी के एवज में वतमान समय तक उसकी भौलाद के कावडिये महाजन महाजनों के बड़े जल्सा में सबसे पहिले पगानी पर तिलक पाते हैं। मग उन लोग में कोई मशहूर भादमी नहीं रहा, तो भी भामाशाह का नाम कुल मुल्क में मशहूर है।”¹

भामाशाह के वंशज उनके पूर्वजों की मेवाड़ राज्य एवं जाति के प्रति सेवाओं की देखकर भोमवाल जाति में सबसे प्रतिष्ठित माने गये। जब कभी जाति-समूह का भोजन आदि सामूहिक कार्य होते तब सबसे पहले इस वंश की पुरुष को

* (इ) देशे बाण्डनामके नरपति श्रीपु जराजोजनि

श्रीमद्भु गरपूवकस्य नगरस्याधीश्वरो दुजय ।

केनाप्यत्र न निर्जितो व(न)हुमति सत्कोपवास्त

पुनय मन्त्री कृतवान् पराङ्मुखमहो दग्ध पुर चाकरोत् ॥

(जगन्नाथराय प्रशस्ति, शिला १, श्लो ५४)

यहां मन्त्री का नाम नहीं दिया है।

सबप्रथम तिलक करन का रिवाज बन गया था। परंतु बाद में जब उनके वंशजों के पास पद, प्रतिष्ठा, धन और बल की कमी हो गई तो रिरात्रीक अथ प्रतिष्ठित लोगों को उनके प्रथम तिलक निकालने की बात अटन लगी। काल की गति बड़ी विचित्र होती है। तब ओसवाल महाजनों की पचासत न इस नियम को भंग कर दिया। इस सम्बन्ध में जब महाराणा स्वरूपसिंह को निवेदन किया गया तब महाराणा के आदेश से उनके पूर्वजों की निष्ठा और सेवा को पुन याद करते हुए आदेश जारी किया गया कि ओसवालों को जाति में बावनी (संपूर्ण जाति का भोजन), चौके का भोजन और 'सिंहपूजा' के अवसर पर आमनाह के मुख्य वंशज को प्रथम तिलक निकाला जाय। इस सम्बन्ध में एक परवाना महाराणा स्वरूपसिंह ने वि.स. १९१२ (चत्रादि १९१३) ज्येष्ठ सुदि १५ (१८५६ई) को जयचंद, कुंदन और वीरचंद इन तीन भाईयों के नाम कर दिया।^१ तब से पुन इनकी जाति-सम्मान और तिलक निकालना प्रारम्भ हुआ। इस परवाने के द्वारा जाति के पंचों को कावडिया वंश के पारम्परिक सम्मान को अशुण्य और नियमित रखने का आदेश दिया गया।

शाह कुंदन के दो पुत्र हुए सवाईराम और अम्बालाल। अम्बालाल मेवाड़ के सरदार उमराव की कालात का काय किया करता था। इसे माडोल के तत्कालीन सरदार ने चोक्डी ग्राम जागीर में दिया था। शाह अम्बालाल के समय में ओसवाल जाति द्वारा पुन उनके वंशानुगत सम्मान के प्रति उपेक्षा की गयी। अतएव महाराणा फतहसिंह के काल में सबसे १९५२ कार्तिक सुदी १२ (१८-९५ई) को मुकुंदमा फैसल होकर आमनाह के मुख्य वंशज को तिलक निकालने की आज्ञा जारी की गई।^२ शाह अम्बालाल का स्वर्गवास वि.स. १९७६ में हुआ। इसके तीन पुत्र हुए- बहुललाल, अमरसिंह और मनोहरलाल। बहुललाल के दो पुत्र कालूलाल और छगनलाल हुए। कालूलाल कालात का काम करता था तथा छगनलाल पुलिस विभाग में था। मनोहरलाल के दो पुत्र रोगनसिंह और जसवंतलाल हुए।^३



१ यह परवाना- देखें परिशिष्ट

२ डा. गौरीशंकर हाराचंद ओमा, 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द २, पृ. १३०४

३ ओसवाल जाति का इतिहास, पृ. ७४

6. भामाशाह की पुत्री

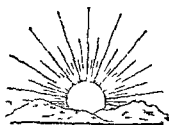
‘जगीशा बाई’ का वंश

भामाशाह की एक पुत्री थी जिसका नाम जगीशा बाई मिलता है। इसका विवाह बीकानेर के सुप्रसिद्ध बच्छावत परिवार के कमचंद के साथ हुआ था। कमचंद सग्राम का पुत्र था। इस वंश में प्रारंभ से ही सब लोग बीकानेर राज्य के मंत्री रहे। राव बीका ने जागल प्रदेश में बीकानेर की स्थापना की एवं अपने स्वतंत्र राज्य की नींव डाली। वत्सराज उसका मंत्री रहा। वह बहुत प्रसिद्ध हुआ। वत्सराज के वंशज बच्छावत मेहता कहलाये। इस वंश में वत्सराज का पुत्र कमसिंह राव गुणकरण का मंत्री बना। कमसिंह का छोटा भाई वरसिंह राव जतसिंह का मंत्री बन। उसके बाद वरसिंह का छोटा पुत्र नगराज भी राव जतसिंह का मंत्री रहा। जतसिंह के पुत्र राव कल्याणसिंह के काल में भी नगराज मंत्री रहा। नगराज का छोटा पुत्र सग्राम शेरशाह सूरी के पास रहा। तीर्थयात्रा प्रसंग से चित्तौड़ आने पर सग्राम को महाराणा उदयसिंह ने सम्मानित किया था। सग्राम का पुत्र कमचंद हुआ, उसे राव कल्याणसिंह ने नगराज की मृत्यु के बाद अपना मंत्री बनाया। कल्याणसिंह के पुत्र राव रायसिंह के काल में भी कमचंद मंत्री पद पर बना रहा। किसी कारण से संभवतः रायसिंह को मारकर उसके पुत्र दनपत को गद्दी पर बिठाने के पड़यंत्र में कमचंद के सम्मिलित होने की आशंका के कारण, राव रायसिंह इससे नाराज हो गया, तब वह परिवार सहित भकवर के दरबार में भाकर रहने लगा। कमचंद की मृत्यु के बाद रायसिंह ने उसके दोनो बड़े पुत्र सोभागचंद्र और लक्ष्मीचंद्र को बीकानेर बुलवाकर मरवा डाला। “कमचंद की एक स्त्री जा भामाशाह की पुत्री थी अपने पुत्र भाण सहित उदयपुर में थी, जिसमें उसका वही पुत्र बचने पाया।”¹

भाण का पुत्र जीवराज, जीवराज का लालचंद और लालचंद का प्रपौत्र पृथ्वीराज हुआ। पृथ्वीराज के दो पुत्र हुए अग्रचंद और हंसराज। अग्रचंद

वो महागणा अरिसिंह ने मोडलगढ का किलेदार नियुक्त किया था। तबसे दीर्घकाल तक उसके वंशजों के पास यह किलेदारी चली रही।

डा. मोभा का मानना है कि- 'उदयपुर के मेहताधो की तबारीख में भाण की भोजराज का बेटा लिखा है। संभव है कि भोजराज या तो कमचद का तीसरा पुत्र हो या भागचद और लक्ष्मीचद में से किसी एक का पुत्र हो। यदि यह अनुमान ठीक हो तो भामाशाह की पुत्री का विवाह भागचद या लक्ष्मीचद में से किसी एक के साथ होना मानना पड़ेगा।'^१



१ डा. मोभा, 'राजपूताने का इतिहास' जिल्द २, पृ. १३१८ पर पावेदियणी

7. परिशिष्ट

1 पुरालेखीय और साहित्यिक

प्रमाण-संग्रह

- 1 ताम्रपत्र
- 2 शिलालेख
- 3 परवाना
- 4 पट्टावली
- 5 साहित्यिक ग्रन्थ

1. ताम्रपत्र

शाह भारमल की उपस्थिति में जारी
किये गये ताम्रपत्र

नदराय का ताम्रपत्र

श्रीरामजी

था गणसजी सुप्रसाद

श्रीऐकलगजी सुप्रसाद

[भाला]

सही

- 1 ॥ सिद्ध श्री माहाराजिधिराज माहाराणा श्री श्री
- 2 उद्वस्यधजी आदेशातु पुंय श्री आभरण जोसी
- 3 हरदाउला रा न रो कली पुतर अरज कीधी गढ
- 4 चत्रकोट मह पुनि सुरज परब आभाव
- 5 स्या सोमोती मह उदक कीधी प्रगणा माडलग
- 6 ढ रै गाम नदराय मह हल ४ री घरती उदक
- 7 द धी बीधा ४५१ अपरे च्यारे सक अकवध
- 8 धीती बीगती
- 9 वाडी गरवो पीवरा माल तथा मगरा अपद
- 10 त प्रदत्त जे पालत वमघरा जे नरा अमरा पु—
- 11 र पोहाच तथ बलगन ददे वा घरा अपदत्त
- 12 प्रदत्त जे लोपत वसघरा ते नरा तरका जायते
- 13 बलगन ददे वा करा दसकत साहा भार
- 14 मल रा मोती माह बढ ५५ सामे स १६१५

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागर उदयपुर में क्र १६८/१ पर सुरक्षित है। यह प्रकाशित है।

इसमें ब्राह्मण जोशी हरदाउला के पुत्र द्वारा चित्रकूट (चित्तौड़) में निवेदन करने पर महाराणा उदयसिंह के आदेश से माडलगढ पराने के अतगत नदराय नामक ग्राम में ४ हल ४५१ बीघा घरती सवत १६१५, माघ बदी अश्विन सोमवार के दिन दान में दी गई। इस पर शाह भारमल ने दस्तखत किये।

कमल्यावास का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्रीगणेशप्रसादात्

श्रीएकलिंगप्रसादात्

[भाला]

सही

- 1 महाराजाधिराज महाराणा श्री उदेस्यध आ
- 2 देशात् जोसी चडीदाम महेसाय लोम
- 3 कूरसा कस्य गाम १ कमल्यावास आघाटे
- 4 उदके दत्ता गाम ऐंदापेडी रे बदले दीधो
- 5 सवन १६२२ वर्षे मागसीर शु १५ दुऐ श्री
- 6 मुप वीदमान स्याह भारमल लीपत पचोली
- 7 गावघन स्वदत परदत वा यो हरती वमुधरा
- 8 पष्टी २ वज सहाराणे वीस्टाया जायते क्रम

इस ताम्रपत्र का फोटोग्राफ राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में सुरक्षित है। यह अबतक अप्रकाशित रहा है।

इस ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा उदेयसिंह ने जोशी चडीदास महेश का कमल्यावास नामक ग्राम दान में दिया था। यह ग्राम ऐंदासेडी के बजाय दिया गया था। इस ताम्रपत्र की सवत् 1622 मागशीव शुक्ल 15 के दिन शाह भारमल की उपाधि मिली और पचोली गोवधन न लिया था।

भामाशाह की उपस्थिति में जारी किये गये ताम्रपत्र और परवाने

सयाणा का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गणेशप्रसादात्

श्री एकलिंगप्रसादात्

[भाला]

सही

- 1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रताप—
- 2 स्यध आदेशात् आचाय बानाजावा
- 3 कीस्तदास बलभद्र कस्य गाम १ मदा

- 4 एो मया कीधा उदके आघाटे दत्त। कू
- 5 भलमेर मध्ये सवत् 1633 वर्षे भा
- 6 द्रवा शुद्धी 5 रोवा दुए श्री मुपे प्रतीदु
- 7 ए दादा रायजी साह भामा पहला प
- 8 तर बले गुयो लुट्या तठे गया सु नवो करे
- 9 मया दीधो साम पीपली वण हैडा पा
- 10 स पड सी सीम थी सुसाल सुधी दीधो

इस ताम्रपत्र का फोटोग्राफ राजस्थान अभिलेखागार कार्यालय उदयपुर में सुरक्षित है (फोटोग्राफ सं 26/133)। इसके अनुसार महाराणा प्रतापसिंह के पादेश से आचार्य बालाजीबा किशनदास बलभद्र को सथाणा नामक गांव भाद्रपद शुक्ल 5 सवत् 1633 रविवार (25 नवम्बर 1576 ई.) को दिया गया। इस भामाशाह न जारी किया। मूल ताम्रपत्र लुट गया था अतः यह नया बनाकर दिया गया।

सथाणा गांव काकराली रेलवे स्टेशन से 12 मील दूर स्थित है।

पीपली का ताम्रपत्र

श्री रामा जयति

॥ गणस प्रसादात् [श्री एकलिंग प्रसादात्]

[भाला]

सही

- 1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापस्य
- 2 घ आदेशान आचार्य बालाजीबा कासनदा—
- 3 स बलभद्र कस्य गाम १ पीपली मया कीधा
- 4 उदके आघाटे दत्त। कू भलमेर मध्य स
- 5 वत् 1633 वर्ष भाद्रवा शुद्धी 5 रोवा दुए
- 6 श्रीमुप प्रतीदुए दीदारायजी साह भामो
- 7 पहला पतर बले गुहा लुटयो तठ गया सु
- 8 नवा करे मया दीधो

भ ताम्रपत्र का फोटोग्राफ राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में सुरक्षित है।

यह ताम्रपत्र जगन्नीलप्रसाद आचार्य के पास है। इनका परिवार उदयपुर में आचार्यों की पीढ़ी जगदीश चौक में रहता है। इनके पास अब तक पीपली गांव

रहा, इन ये लोग 'पीपली' के आचाय कहलाते हैं। ताम्रपत्र म कहा है कि महाराणा प्रतापसिंह ने कु भलगढ म रहत हुए आचाय वालाजीवा किसनदास बलभद्र का भाद्रपद शुक्ला 5 सवत् 1633 रविवार का पीपली नामक गाव दिया था। इस ताम्रपत्र को भामाशाह न जारी किया था। मूल ताम्रपत्र खा जान पर यह नया ताम्रपत्र बनाकर दिया गया।

यह विशेष द्रष्टव्य है कि आचार्य जगदीशप्रसाद के पास वाले ताम्रपत्र म जो महाराणा प्रताप स्मृतिप्रथम मे छपा है, तिथि सवत् 1633 भाद्रपद शुक्ल 11 रविवार दी है।

मही का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

[भाला]

सही

- 1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापस्यध
- 2 आदेशात् आचाय वालाजी वा कीसनदास
- 3 बलभद्र कस्य गाम महीम् । हेरहद 3 अग
- 4 री क व्हे सु मया कीधा दुइ उदक आघाट द—
- 5 त । सवत 1633 वर्षे आसोज वदी 6 भुमे
- 6 कूभलमेर मध्ये दुए श्रीमुपे प्रतीदुए
- 7 साह भामो पुर्वा रीत व्हे सु मया कीधो व
- 8 ले गुठो लुटयो त्ठ पतर गया था मु नव्या
- 9 करे मया कीधा

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलखागर उदयपुर म स 1288 पर सगृहीत है।

इस ताम्रपत्र की एक प्रति आचाय जगदीशप्रसाद जगदीश चौक, उदयपुर के पास है। इसमे बताया गया है कि महाराणा प्रतापसिंह ने कु भलगढ म रहने हुए आचाय वालाजी वा किसनदास बलभद्र का मही (मोही) नामक गाव म 3 रहत आश्विन कृष्णा 6 मंगलवार म 1633 की दिए थे। यह ताम्रपत्र शाह भामाशाह न जारी किया था। पहले महाराणा उदयसिंह द्वारा ताम्रपत्र बनाकर दिया गया था वह लुट जाने पर पुन यह नया ताम्रपत्र बना कर दिया गया।

माही गाव काकरोली रेलवे स्टेशन से करीब 4 मील दूर है।

आटा ग्राम का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गणेशप्रसादात्

श्री एकलिंग प्रसादात्

[भाला]

सही

- 1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रताप
- 2 स्यध आदेशात् प्रोहीत राम भगवा
- 3 न वासी वस्य गाम १ छोडा मया कीधा
- 4 उदके आघाट दत्त । पहनी उदक रा
- 5 णा श्री उदेस्यध रो था सु पतर गागुद क
- 6 एक आयो त दीम । दड । माह गयो सु पत
- 7 र नवा करे मया कीधो कुमलमेर मधे
- 8 म 1634 वर्ष मागसीर वदी 3 भुमे
- 9 दुए श्रीमुख प्रतीदुए माह भामा ली
- 10 पत पचाली जेता

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में न 879 पर नमूद है। मूल ताम्रपत्र अब तत्तु अप्रतिष्ठित रहा है, इसका हिन्दी सार डॉ. श्रीमान ने राजपूताना का इतिहास खिन्द 2 पृ 774 पर दिया है।

इस ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा प्रताप 7 घाटा नामक ग्राम पुरोहित राम भगवान काजी को पुण्याय दिया था। पहले इस गांव को महाराणा उदयसिंह न दान में दिया था परंतु भोगूदे की लड़ाई (हल्दीघाटी युद्ध जून 1576 ई.) के फलित में उसका ताम्रपत्र लो गया इसलिए यह नया बनाकर दिया गया। इसकी प्रामाण्यता का द्वारा पहूची और गवोनी जेता न इस लिखा है।

पुरोहित राम मनाढय ब्राह्मण था वह कोठारिया के चौहानों का पुरोहित था। वनबीर के काल में कुमलमेर की गद्दी पर उत्पतिह को बठाने बाल मरदारो में कोठारिया का रावत खान प्रमुख था। उस पर पूरा विश्वास होने के कारण महाराणा ने विश्वसनीय मक्का को रावत से ही किया था उनमें पुरोहित राम भी था। तब से उसका वंशज उदयपुर में रहते हैं।

मृगेश्वर का ताम्रपत्र

- 1 महाराजाधिराज महारा
- 2 रण श्री प्रताप स्यधजी आदे
- 3 सातु चारण कान्हा हे गाम
- 4 मीरघेसर दत्त मया कीधो
- 5 आघाट करे दीधो सवत् 1639 वर्षे
- 6 फागुण सुदी 5 दुए श्री
- 7 मुख वीदमान साह भामासाह

इस ताम्रपत्र को मुंशी देवीप्रसाद ने सरस्वती' भाग 18 सख्या 2 पृ 95 98 पर प्रकाशित कराया था। इसका आशय यह है कि महाराणा प्रताप के आदेश से शाह भामाशाह ने मीरघेसर (मृगेश्वर) नामक गांव चारण कान्हा को फाल्गुन शुक्ल 5, सवत् 1639 को दिया था।

मृगेश्वर गांव गोडवाड क्षेत्र में (वर्तमान पाली जिले में) स्थित है। कान्हा सादू चारण था और बित्तीड के निकट डुम्पखेडी का निवासी था। इसने महाराणा की सेना में हल्दीघाटी में युद्ध किया था। इस युद्ध के वर्णन के संबंध में उसने एक गीत बनाया जिस डॉ. देवीलाल पालीवाल ने 'प्राचीन डिगल काव्य में महाराणा प्रताप' ग्रंथ में गीत सं 36 पर प्रकाशित कराया है।

मुंशी देवीप्रसाद ने इस ताम्रपत्र के साथ 'दन्तालपत्र' को भी प्रकाशित किया है। चारण लोग ताम्रपत्र के भाव को कंठस्थ करने के लिये उग्र श्रद्धा कर लिया करते थे, उसे दन्तालपत्र कहा जाता था।

तिथि-पत्रक से ज्ञात होता है कि उक्त तिथि को गुरुवार नहीं अपितु शनिवार था।

बाधण का ताम्रपत्र

श्रीरामो जयति

श्रीगणेश प्रसादात्

श्री एकलिंग प्रसादात्

[भाला]

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्री
प्रतापसिंघ आदेशतु आयस आणदनाथ
वस्य हल 4 दुरी धरती गांव बाधण

सीधरी माह पली छे समद कीदी

स 1645 वर्षे आसाजब्द 7 दुव

थो भुख प्रति दबै साह भामा

यह ताम्रपत्र रामविश्वन जाशी विश्वनगढ को मिला था। इसका प्रमाणन आय रामचन्द्र तिवारी ने जनत आप दि युनिवर्सिटी आफ बोम्बे' वाल्युम 31 पाट 4 पृ 50 पर कराया था। प्रस्तुत ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा प्रतापसिंह के आदेश स म 1645 आश्विन कृष्ण 7 को आपस आणदनाथ के भीदरी के बाघण नामक ग्राम म 4 हल (1 हल=लगभग 3 बीघा) भूमि दी गई थी। इसे शाह भामाशाह ने जारी किया था।

गाव पडेर आ ताम्रपत्र

थी रामो जयति

थो गणपजी प्रसादातु

थी एकलिंगजी प्रसादातु

भाला (चिह्न)

सही (चिह्न)

सिव था मह र जाधिराज महाराणाजी थी प्रताप

सीधजी आदेशातु तिवारी सादुलनाथण

भवान काना गोपाल टीला घरती उदक आगे

राणाजी थोजी तावापत्र करावे दीघो थो

प्रगण जाजपुर ग गाव पडेर महे हल ११

घरत बीगा गारा करे दीघो थी मुप हुकम

हुओ साह भामा सवत १६४५ काती

मुद १५ महाराणाजी थो उदेसिधजी रा दत्त

इस ताम्रपत्र की फोटो-प्रति राजस्थान अभिलेखागार उदयपुर के कार्यालय म (फोटोग्राफ न 368) सुरक्षित है। इस ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा प्रतापसिंह द्वारा तिवारी सादुलनाथ काना गोपाल को जहाजपुर परगन के अंतर्गत पडेर नामक गाव म 11 हल भूमि दी गई थी। इसे शाहभामा न सवत् 1645 कार्तिक शुक्ल 5 (24 अक्टूबर 1588 ई.) को जारी किया था। यह ताम्रपत्र महाराणा उदयसिंह द्वारा पून म दिय गये ताम्रपत्र का नवीनीकरण करके दिया गया है जो सभवत खो गया होगा।

डाइलाणा का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गुणोस प्रसादात्

एक्लिग प्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिंघ
आदेशातु चाधरी राहीतास कस्य ग्राम
मघ कीधो ग्राम डाहीलाणा वडा
माहे खेत 4 बरसाली रा उदक आघाट
१ पेत बडयाना १ पेत राजाबो १ पेत
५१ पत्सा १ पाज्येजवा ४ भोग कलसी
४॥ अ (र) हट १ साणवे भाग कलमी
४॥ देसी स १६५१ ब्रप आमोज
मु० १५ दव श्री मुख बीदमान
मा भामा ।

डाइलाणा ग्राम गोडवड क्षेत्र (जिला पाणी) में स्थित है। इस ताम्रपत्र को शिवसिंह चौयल न राजस्थान भारती भाग 3 अफ 34, पृ 35-36 पर प्रकाशित कराया था। इसके अनुसार महाराणा प्रतापसिंह न चौधरी राहातास को डाईलाणा ग्राम में 4 खेत और 1 रहट न्यि थे। इनमें सत्ताका विवरण निया गया है। इन खेतों पर जो कर लिया जाता था उसका उल्लेख कलसी में दिया है। कलमी अनाज मापन का एक पात्र होता था। पायला या पायला के साथ कलसी शब्द की माप विज्ञाप के अर्थ में प्राचीनकाल से उस क्षेत्र में प्रचालित था। गोडवाड के चौहाना के शिलालेखों में इसका उल्लेख मिलता है। इस ताम्रपत्र को शाह भामा की उपस्थिति में दिशा गया था।

परधाना

श्री रामो जयती

श्री गुणोस प्रसादात्

श्री ऐक्लीग प्रसादात्

[भाला चिह्न]

मही

- 1 स्वस्ति श्री कटक दन का डेरा मुखाने माहाराज श्रीराजम
- 2 हाराणा श्री प्रतापमीधजी आदेशातु आचारज वात्रा प्रल

- 3 भद्र कस्य । अग्रचे० वेणीदास तो जगडा मे काम आ
 4 यो ने थे कड़ी चता करो मती रुगनाथ रो पात्री रेवे
 5 गा ऐक दाण रुगनाथ ने पेतावा भेजजो थे पो जमा पात्री
 6 रापजा रुगनाथ रे बाप थो हजुर ह थे कड़ी चता करो मती
 7 दुवे श्री मुप साहा भामा समत 1634 को पोस सुद १०

यह परवाग मूल रूप में जगदीशप्रसाद आचार्य आचार्यों की पोल जगदीश चौक उदयपुर के पास है । इसके अनुसार वेणीदास व युद्ध में मारे जाने के बाद आचार्य बाबा बलभद्र को महाराणा की ओर से यह सात्वनापत्र लिखा गया है । संभवतः वेणीदास उमका पुत्र था । वेणीदास का पुत्र रुगनाथ था उसकी देगभाल की जिम्मेदारी महाराणा स्वयं ने अपने ऊपर ली थी । इस शाह भामा द्वारा स 1634 पोस शुक्ला 10 को लिखा गया था ।

साह अखेरान की उपस्थिति में जारी किये गये ताम्रपत्र

ठीकुर्या ग्राम का ताम्रपत्र

श्रीरामो जयति

श्री गणेश प्रसादातु

श्री ऐकलिंग प्रसादातु

[भाला]

सही

- 1 ॥ महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसिंघजी
 1 आदेशातु गढवी पीमराज जात धधवाडा
 3 कस्य १ गाव ठीकुर्यो वडा उदक आघाट व
 4 रे मया कीघो दुवे श्रीमुप प्रतदुवे साह अप
 5 राज लीपत पचोली केसोदास स्वदत पर
 6 दत जे हरत वीसधरा पस्ट वरस सेहमरा —
 7 ए वीस्टाग्र जाइते क्रम सबत १६८५
 8 त्रपे असाड वदी 3 मुक्रे

ताम्रपत्र के बायीं ओर ऊपर से नीचे खड़ी एक पंक्ति लिखी है—

१ भाडी पीमराज धधवाडाहे दीघोजी १

ताम्रपत्र के पृष्ठभाग में अथ व्यक्ति के हस्ताक्षरों में निम्न पंक्तिया प्रकृत हैं—

- 1 स० १७०२ अथ माह सुदी ५ गुरु घरा वास की
- 2 घो तदी भया अर रागे श्रीजगतमधजी
- 3 गाम रो नाम करे वेमपुर नाम दाघो

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में स 1398 पर सुरक्षित है। यह वीरबिन्द, भाग 3 पृ 380 एवं राजस्थान के इतिहास के स्रोत' (डा गोपीनाथ अर्मा) भाग 1 पृ 257 पर भी छप चुका है। इसके अनुसार महाराणा जगतसिंह की आज्ञा स गढ़वी (चारण) खीमराज दधिवाडिया को सवत् 1685 आषाढ वदी 3 शुक्रवार के दिन ठीकरिया ग्रामक ग्राम दिया गया। इसे शाह अपराज ने जारी किया और पचोली कंसोदाम ने लिखा था। ताम्रपत्र के पीछे लिखी हुई पंक्तिया स नात होता है कि स 1702 में महाराणा जगतसिंह खीमराज के घर ठीकरिया ग्राम में पधारे थे तब उस गांव का नाम खीमराज के नाम पर खेमपुर रखने का आदेश दिया। उदयपुर के पुराने रेलवे स्टेशन के पास खेमपुरा अब भी विद्यमान है।

आघाखेडी ग्राम का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गणेश प्रसादातु

श्रीएकलिंग प्रभादातु

[भाला]
सही

- 1 ॥ महाराजाधिराज महाराणा श्रीजगतसि—
- 2 धजी आदेशातु भट वासदेव कस्य गाम ॥
- 3 आघाखेडी उदक आघाट करे रामा अपराज
- 4 कीघो गढ़वी तोडरी तल्लेटी दुवे श्रीमुप
- 5 सवदत परदत जे हरत बीसघरा पस्ट वर
- 6 प सेहसराण बीसटाअ जाडीते नीम प्र
- 7 त दुवे साह अपराज सवत् १६८५ अथ भा
- 8 दवा सुदी ८ गुरे सीपत पचोली कंसोदाम

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में स 1661 पर सुरक्षित है। यह अब तक अप्रकाशित है।

इसके अनुसार महाराणा जगतसिंह(प्रथम)के आदेश से भट्ट वासुदेव को आधीखेड़ी ग्राम रामायण करके (दानरूप में) सन्वत् 1685 भाद्रपद सुदी 8 गुरुवार के दिन दिया गया था। यह ताम्रपत्र शाह अपराज की उपस्थिति में दिया गया।

ग्राम गुणहड का ताम्रपत्र

श्री रामा जयति

श्रीगणेशप्रसादातु

श्रीऐकलिंग प्रसादातु

[भाला]

मही

- 1 ॥ महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसिंह
- 2 जी आदेशातु जोशी धरमदास कस्य गाम
- 3 गुणहड माहे हल १ ऐक री धरती उदक आ
- 4 घाट करे रामा अरण कीधी डीणोरा पेह
- 5 ला पेत छ ज्या मीये हल ऐक री धरती दीधी
- 6 दुवे श्रीमुष प्रतीदुवे साह अपराज ली
- 7, पत पचोली केसादास सवदत परदत जे
- 8 हरत वीसधरा पस्ट वरस सेहसराण वी
- 9 सटाअ जाडीते काम सवत १६८६ वषे
- 10 भादवा वदी 10 सोमे पत धरमदास रा

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में क्रमांक 941 पर सुरक्षित है।

इसके अनुसार महाराणा जगतसिंह के आदेश से जोशी धरमदास को गुणहड ग्राम में एक हल धरती सन्वत् 1686 भाद्रपद वदी 10 के दिन दी गई। इस धरमदास ने लिखा है। इसको शाह अपराज की उपस्थिति में दिया गया।

★★

2. शिलालेख

सादडी की तारा-बाघडो का शिलालेख

- (1) ॐ ॥ श्री गणेशाय नमः । श्री ब्राह्मणे नमः ॥
- (2) (श्री) रक्षोनीनारायणाय नमः ॥ श्री उमामह
- (3) श्वराय [राम्या] नमः ॥ अथ श्री नपविजयनाथ समय (या)
- (4) त् ॥ सवत् 1654 वर्षे शाक 1520 प्रवर्तमान
- (5) महाभागल्यप्रदवशापम(१) स कृष्णपक्षे द्वि
- (6) तीयाया तिथौ बृहस्पति(ति)वासरे श्रीसादडी
- (7) नगर ॥ महाराजाधिराज महाराणा श्री श्री
- (8) अमर शयजी विजयराज (ज्ये) उमवाली पातो
- (9) य कावडीय गोत्र आकव अरद निराजमा ।
- (10) साह श्री भारमल तद्धाया शीलालकारध
- (11) रणी अनकतुल्य पुरुषाद (पेम्भ) महापुण्यकार
- (12) नी नादेवा गोत्रगायि (य) नीगगाजलनिमला
- (13) मात् श्री कप् रनाम्नि तयस (तस्या) पुत्रस्य
- (14) ताराचदस्य एकादशसतीसहित (?) सपुत्र्य (पुण्यार्थी)¹
- (15) श्रेयार्थी श्रीनारायणावि नामक तीर्थ कारित
- (16) तत्पुत्रेण साह सुरताण (सुरताण) जीनाम केन प्रत (नि)
- (17) पत्यमान विजीयोना (विजयाना) [म्] शुभ भवतु । ठ
- (18) यावत् कृष्णधृता धरा विजयते मावद्मुजगा
- (19) धिप पाताले पवमानपूरिततनुर्मावद्रवि
- (20) श्वद्र । तावत्तिष्ठतु तीर्थमेतदमल वा
- (21) पी महामहपा साह श्री सुरताणकेन वि
- (22) हित मागल्यपुष्टिप्रद ॥ श्रीरस्तु । श्री ॥

[¹ शुद्धप = स्य पुण्यार्थी]

ताराचद की छत्रो में लगा हुआ शिलालेख

- पविन 1 ॥ श्री गणेशराय नमः ॥ स्वस्ति श्री अद्भि इद्भि जयो मगला
भ्युदयश्च ॥ अथ श्री विक्रम सवत् 1648 वर्षे वशाख मासे कृष्ण
2 पक्षे अष्टमी तिथौ भीमवासरे गगाजलनिमली वा श्री
श्रीसवाल पातो कावेडिया गोत्रे शाह ठाकुर साहव श्री

- " 3 108 श्री भारमलजी गृहभाया (यी) व पू श्री मेवाडी तत्पुत्र
शाह ठाकुर साहव श्री 105 श्री ताराचन्द्रजी
' 4 स्वर्गाहो जात तस्य पत्नि श्री तारा 1 श्री विजयदे 2
श्री भूमरदे 3 श्री साभागदे 4 श्री वीराहदे 5
' 5 सहगत । पवनि केतु श्री सहगत 6 ॥ तथा ॥ गणिका कामरेया
1 गुणमूत्रदा 2 वसतमाला 3 फूलमाला 4 कोरी
6 ला 5 मोहिनी 6 एतानि सहगमन कृत ॥ सवत् 1649 वर्षे
कार्तिक सुदि 15 साम एषा छती बीनी ॥ श्रीरस्तु ॥
' 7- श्री छती रा जीर्णोद्धार व नवीन मूर्ती स्थापन सवत् 2013 चत्र
सुदि 10 शुक्रवासरे बीनी ॥ श्री रस्तु ॥

3. परवाना {स 1912}

श्री रामो जयति

श्रीगणेशजीप्रसादात्

श्रीएकलिंगजी प्रसादात्

[भाव का निशान]

[सही]

स्वस्ति श्री उम्पपुर मुभमुवाते महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सहर्षोत्तिथी
आदेगात् कावड्या जेवद कुनगो धोरचदकरय अप्र थाग बडा बाना भामो
कावड्या ड राजम्ह साम घमासु वाम चावरी करी जी की मरजाद ठठसू य्या ह
म्हाजना बी तम्ह बावनी त्या चीका को जीमण बा सीग पूजा होवे जीम्ह
पहनी तत्क थारे होवो ही सो अगला नगरसठ बेलीदास करसो वयो अर
वदयाफत तलफ थारे नही करवा दीदा यवारु घारी साचमी दीखी सा नगे
कर सठ पेमचद न ह्वम कीदो सो बी भी अरज परा अर घात म्हे ह्वमर
मालम हुई सो अद तलफ माफक दमतुर के थ थारो कराय्या जा ते यागासु
धारा बस को आदेगा जी क ततक हुवा जावगा पचान थो ह्वुम कर दीय्या है
सा पेला तलफ थारे होवेगा । प्रवानगी म्हेता सरसीघ सवत् 1912 जठ
मुद 15 बुधे ।

[यह पत्र हिंदुससार, दीपावली एक कार्तिक कृ 30 वि म
1982 म छपा है ।]

4. पट्टावली

नागपुरीय लु कागच्छ पट्टावली

॥ ॐ शिव ॥

॥ स 1616॥ चित्रकूट महादुर्गे वावडियावयो भारमल्लो धनो तपाणीयोभूत् ।
तेन श्री देवागरसूरीणामभिधान शुद्धक्रियाधारवत्त्व च श्रुतम् । तदादित एव
तदगुणरञ्जित चेतस्कोऽवदत् ।

श्लोक —

धयो देवागरस्वामी प्रदीपो जनशासन ।

एष एव गुरुर्मेऽस्ति धयोऽह तन्निदश्चूत् ॥ 11 ॥ गा 9

इति भावनया शुद्धात्मऽभूद् भारमल्ल तस्मिन्वसरे तपत्यो भोमा नामा
नाहोऽस्ति । तद्गृहेषु पुण्ययोगाक्षिणावत्त शस्त्र प्रादुरभूत् । तत्मानिध्यात्
गृहेऽष्टादश कोटयो धनस्य प्रकटी भवति ।

अथ पडमासी प्रातः शस्त्रदेवेन भोमावस्य स्वप्न दशन दत्त निवेदित
च ॥ भोमो साह त्वं शशु । तव भार्याया उदरे पुत्रीत्वेन कश्चिज्जीव
समेतोऽस्ति वावडिया भारमल्लभार्योदरे सुकृती कश्चन् जीव सुतो
भवतीर्णोऽस्ति । ततश्चतुष्प्रेरितो भारमल्लवावडियागृहे गमिष्यामि इत्याकण्य
भोमाकोवन्त् एव मा याहि यथाह करोमि तथा गच्छेत्पुक्ते त नामेति
भणितम् ।

अथाहुमुखे जाते सवस्वजनसहित शस्त्रस्वनजागरूकीकृतानेकलोक
स्वर्णस्थाले दक्षिणावत्तशस्त्र निधायतिमहाध्यवस्त्रेणाच्छाद्य भामाको भारमल्ल
भवनाभिल्लमुमागतास्तमायास्तमालोक्य मानद साभार भारमल्लोऽभिमुख
मिलित पृष्ट च किमागमनप्रयोजन । प्रोच्यतामित्युक्तो भामाकोऽवदत् कर्णे
भो । सामयसम्बधिन् मम पुत्री तव पुत्रो भविष्यति तयो सम्बध कर्तु
श्रीफलस्थाने इदमदमुतमहात्म्य शस्त्र ददामि इत्यानर्तये समुत्पन्नपरमामोदो
बहुतदानमानपूर्वकमगृहीत भारमल्ल गृहकोष्ठक । त समभ्यर्च्य सम्यक् चदन
चतुष्किकोपरि सस्थाप्य सस्मृतो देवस्तेनाष्टदशकोटि धन तत्र प्रकटित हृत ।
एकदा तत्र वनान्त रुचमण्डपाद्यो धमध्यान विदधत् साधुगुणप्रामाभिरामा
श्रीदेवागरस्वामी शुद्धतपाधनो भारमल्लेन दृष्टो विधिवद् बन्धितश्च । शुद्धधर्मोप
देशामृत पीत श्रवणाम्ब्याम् । अतिप्रसन्नं भारमल्लेन विमृष्टमहो । महान्
माग्योन्मो मे प्रकटितो यदीह्ण गुणगौरयो दृष्टः सर्वोऽर्थो मे सत्सर्पित । तदा
भारमल्लो ऽयं च बहव आवका जाता नागोरीलु कगणीया ।

अथ भारमन्त्रस्य भामानाममृतोऽजनि । महान् महं कृत । मन्त्र
 शान्तिनाऽविजनमोक्षया पूरिता अयपि ताराचन्द्राय पुत्रा अभवन् । तत्र
 भामाशाहृतारा १ द्रौ विश्रुता गतो । स्वगच्छरागण बह्वो जना स्वगण
 पुन श्रीराणाजीतामात्यपद लब्ध्वा बलिनो गतो । ताराचन्द्रेण माण्डानाम
 नगर स्थापितम् । सवय पौषशालादिवानि स्थानानि धारितानि । स्थान
 स्यात् पुरे पुरे ग्राम ग्राम बहुजनम्यो धन दाय दाय स्वगणीया कृता ।
 श्रीनाभरीतु काण्ठोऽनिस्वातिमाप । पुन भामाशाहन त्रिम्बरमतगा
 नरमियरोरा स्वगण मरानीया । बहुस्व दत्त्वा 1700 गृहाणि त मात्मीयानि
 कृतानि । भिण्डरनादिपुरेषु तत्र च जात श्रावणगृहाणा चतुरशीतिसहस्राधिक
 तन्ममम् ।

(श्री अग्ररच न नाह्य तारा त्रितित भामाशाह विजयर जिहासामा
 का ममाधन गोपक नगमाया वीरगासन' के अकाम प्रकाशित हुई थी ।
 उम्मी लेखमाला म वीरशामन क 1 जनवरी 1953 के अंक पृ 7 पर प्रकाशित
 ना। गी तु नागच्छ की मस्कृत भाषा की पट्टावली से उद्धृत य अक्ष हैं । इस
 तथ्यमाना म दो पट्टावलिवा प्रकाशित ी गई हैं— एक मस्कृत मे एक दूसरी
 गोरभाषा म । मस्कृत भाषा की पट्टावली म लोकभाषा की पट्टावली की
 अपक्षा विस्तार से वर्णन दिया गया है साथ ही लोक भाषा की पट्टावली भी
 मस्कृत की पट्टावली पर आधारित है ।)



5. साहित्यिक ग्रंथ

भामाबावनी

भामाबावनी की रचना विर' वारक नामक कवि ने की थी। इसके नाम का उल्लेख भामाबावनी के पद्य संख्या 53, 54 और 55 में हुआ है। इसके हमारे और तीसरे पद्य में भामाशाह के जाति, वंश परिवार गुरु और धर्म को विषय में परिचय दिया गया है। शेष चौथे से बावनवें पद्य तक भामाशाह के लक्ष्य कर नीति सबधी बातें कही गई हैं। अन्तिम चार पद्यों में रचनाकाल और रचायिता का नाम आदि बातें दी गई हैं।

इसका रचना काल स 1646 आश्विन सुदि 10 दिया है एक आय प्रति में इसका रचनाकाल स 1648 दिया है।

इस कृति को पूनचन्द्र नाहर (कलकत्ता) के संग्रह (गुटका स 96) से प्राप्त कर अग्रचन्द्र नाहटा ने शोधपत्रिका वर्ष 14 अंक 2 (अप्रैल 1963) में प्रकाशित कराया था। श्री नाहटा जी को कुछ समय बाद इस कृति की आय प्रति भी मिली, इसके आधार पर पूर्व प्रकाशित भामाबावनी के पद्य स 5 28 52 की त्रुटि पंक्तियों को पूरा किया। बाद मिली इसप्रति में रचनाकाल छताला क स्थान पर 'मठचाल (1648) दिया है।

इस काव्य की भाषा डिगल पिंगल मिश्रित राजस्थानी है।

ऊकार सबद आदि धुर एह उपनो ।
ब्रह्मा विसन महस शिव सु सकति सपनो ॥
पछइ अखर पूछेवि बनि बावन करि बाधा ।
पछइ वेद व्याकरण लिखत जोतिप सह लाधा ॥
आरभि शृष्टि पाछइ भवर, मुणिवाजस मन खनि मुने ॥
ऊकार शवद जन उच्चरइ, जिके भाम सु प्रसन तु नइ ॥1॥

नमल गच्छ नागोरि नानि, देपाल जिमा गुर ।
दया धम्म दासिय देव चउबीम तिषकर ॥
पिरियावटि पृथिराज साड भारमल्ल मुणिज्ज ।
जसवत बाघव जोड करण क्लीयाण वहिज्जइ ॥
ताराचंद लक्ष्मण राम जिम धित घोरण जोडी थयो ।
कुल तिलक भमग कावेडिया, भामो उजवालेण भयो ॥2॥

मूल पेड भारमल, साख कावेडिया सोहइ ।
 पुत्र पौत्र परिवार मउरि, भक्षण दति मोहइ ॥
 लखमी नित लखगुणी फालतिया सुइज फूल फल ।
 विस्तरियो जसवास, कीर कवि करइ कतूहल ॥
 विस्तार घणउ चिटु खड विचइ, जुगि आलवणि एहजण ।
 कलिकाल इयइ पीयल कुलइ, भामउ कलपत्त भवण ॥3॥

सिध गोरखा सारिसा जती लखमण भटजेहा ।
 सीत मरीखी सती सामि चिति एक सनहा ॥
 हगमत जिसडा हुवे सग स्व मि घरमि सुसच्चा ।
 पत्य जिसा पुरसात कह नम भरइन बच्चा ॥
 जमवत जुधिठुल वाचजिम दा करणा हरिबन् सति ।
 एहवा मनिख इल उप्परइ भाम करइ तिणपय भगति ॥4॥
 घय जे नर धनवत धम्म ग्रहनिम मन धारइ ।
 घय जे नर धनवत धत्र सु कुटुब सधारइ ॥
 घय जे नर धनवत, ध्यान भगवत ही ध्याव ।
 बले घय ते वदा, खित्त वित विलसई पावइ ।
 न न घमन ध्यान नदान पुन, कहा ने उधावन करइ ॥
 त निसा मनिख भामउ कहइ मुय भारणि हुइ भवतरइ ॥5॥

पाया आदर करउ त्रियउ मन मुद्ध लिलामा ।
 साहमा साहया मिलउ मगे साजण सहासा ॥
 भगति करउ भोजन सुतो आपण घर मारइ ।
 वारं जे हे बात तह नहवइ जमवारइ ॥
 साभलउ सीख सयणा नरा रुडव मनि पुरउ रला ।
 काइ नल वनक भामउ कह , ग्रहनिस् तरवर आवली ॥6॥

आसा सपति अखी आस पूरइ अपरपर ।
 प्राप्त तण्ड सुपसाय याय जीवइ निरधन नर ॥
 आहुडी करि आस खरव घरि बइठउ लावइ ।
 मिरघ चरव वन मज्झ, मस पुर माहि बिकावई ।
 कुण लखइ पयइ हुटस्यइ कर् सोइ दिन पूरव मुखी ।
 साह कहइ भामा सयणा सरिस इम आसा सपति अखी ॥7॥
 इखल मन पीलियइ ओह रस दाइ अनापम ।
 अगर अगनि घरत, तास अतिवास थियइ निम ॥

चूनउ देतावता बधइ, रग नागर बली ।
 घृत अमृत हुवे घणा मही जब मये महेली ॥
 चाल रग अने अबरि चढे घोयां जिमवाणी धरइ ।
 पाय कहइ भाम गुणवत नर ए दुह पाया ही गुण करइ ॥8॥
 ईस पात रचउ एम, दान धूमर नव दोघो ।
 ए धूमर घाढवी, रूपउ म बाबइ रीघो ॥
 ए उमया चउ रूप, कृष्ण करि आयो ।
 ए कृष्णची कला हत करि शम्भु हसीयउ ॥
 अपना ग्रन्थ गां अजनी, जायउ जिणि हनुमत जसउ ।
 पातरइ पुरुष किरण ही कपरि कह भाम अचरज कसउ ॥9॥
 उमया आगलि ईम ध्यान नाटारम धरतउ ।
 रुन्दावन महि बले, काह पिण यु द्विज करतउ ॥
 माघ हुव मूरिबल महिल कहि सीस मु डायउ ।
 भागमती राउ भाज करे हयवर हासायउ ॥
 भाज ही लगइ आगा लगइ जे किरला त गजीया ।
 तिरण कहइ भाम आगलि प्रिया, नर कुण कुण नह नच्चिया ॥10॥
 ऊठउ उद्यम करउ, समय नर नर हो सूता ।
 इग माया मोह मड कित्ता सू दा लिम सूता ॥
 चोर फिरइ चउहटइ, सजन कीज्यो सहराई ।
 काया गढ कारिमउ कोट कागुरा न साई ॥
 जागमो जिके इम जाजिनइ ते अविचल रवि धूतही ।
 भाम कहइ दान तप भाव विण, नर निद्रा साइवउ नही ॥11॥
 रोम न जीवइ हृदे रोम मन जाणउ रढी ।
 रोम किया रथ चढइ जमघर छाढइ जूडी ॥
 रोस किया धीरोम, सजण दुरजण हुवे साई ।
 रोस पढेइ कुल रेह, बरे नह सगति कोई ॥
 रोस घी नट रूपक न हुइ कुलसत हुव आतया ।
 साह कहइ भाम मयणा मरिम छाति बरे भालउ लिमा ॥12॥
 रोम्हे नइ बलि राव, थूष्ट वामेन ममणी ।
 रोम्ह गढइ रूपक, कण तापक बध कण ॥
 रोम्हे न रघु राम लज बभीषण साधी ।

कृष्ण रीभवे बला, सहू पर भरजन साधी ॥
 सदतार सुयण गेभे सदा मुदिन दान अप्पति सही ।
 कवि विसउ दोम भामउ कहइ, नेट मूम रीभइ नही ॥13॥
 लिगमी दी लोभीया, निद्धि दीधी नव नदा ।
 विद्या दी निरघना, सल्लि दे दियो समुदा ॥
 निबुली रूपउ निलउ कुरूप पायो कुलवती ।
 पचायण पुरसात दीघ काया वृधदती ॥
 नागरवलि निरुपल रही, जे फल तूबणी ।
 करतार सरिस को न विक्कउ भाम कहइ सुयणाह मणी ॥14॥
 सम्ममण वाढे लीह सात घागुली लगाइइ ।
 ता रावण रूप चुप करि काधे चाइइ ॥
 पइला समुदा पार लवधि लकागइ लेो ।
 रामायण करि राम वगजी ल्यावठ वेगो ॥
 मामलउ मीग एहवी श्रवणि भाम कहे मुराणा मणी ।
 लोपीये लीह लछण लगे लीह न लापो कुलतणी ॥15॥
 एक वार दातार दान पिण एव न देवे ।
 एक वार भूभार लोह सग्रामि न लेवे ।
 एक वार कवियार प्राय गुण भणतउ चुक्कइ ।
 एक वार भूभार मांडि मन पाटू मुक्कइ ॥
 एक वार तुरी भउ आतनइ वदाचि कृपितो कही ।
 साह कहू भाम मुपमा सरिस नर इतना हसियउ गही ॥16॥
 एको घण उन्नमइ उगत्र सिगली जीवाइई ।
 एको ऊइ अरव, तिमर तजा करि ताइइ ॥
 एको सीह अवाह नाम जिण गयघइ नासइ ।
 एको चदण अछे वत्र परिमल सहु बोसइ ।
 कापुरिस घणे बून न वयु वयण भाम सक्कउ वरइ ।
 मुपुत्र एक बुलि सभमइ एक अनेका उद्धरइ ॥17॥
 झोलवि बत्ता वार ग्रभ म करिम गरइइ ।
 आयम जाअ आपणो पेड तन त्वच पराई ॥
 लाव चउरासी लार घुरा की बेला घायउ ।
 हुबर सुवस दवेवि, एव मानला भव आयउ ॥

भाम कहे सोई रस भोग मा, गहि न मम अहि लोग मिसि ।
कीधी न टउड इणि भवि कई, भव अनेक भूलउ भमिसि ॥18॥

आलगता अन्तार रहसि करि कदे न रीझइ ।
पाणा माहि परवाण, भेद भीतरि नह भोजइ ॥
नव कुल अधिकउ नाग, मत्र गारुडा न मानइ ।
पीतलि नसि परखियइ वधइ नवि किणही जइव ॥
साविज अहोनिश दूध पी नीव सोहि मोठी वानइ ।
भाम कहइ इता मूलगा भजा सुपणा ए निगुरा जवइ ॥19॥

आडि तरति देखि बगा काइ तरइ अयाणउ ।
सीह हाक साभले, स्याल किण-वाज समाणउ ॥
नगी बहती निरखि, वहै काइ सजल सरोवर ।
घनवस मु निरघन बइसि यू वरइ बराबर ॥
ज दियो जिये पायो तीये तणि बात नवि बोललउ ।
आपणो सकति मारइ उदिम भाम कहइ कविउ भलउ ॥20॥

आषा अजण दीये, पनगले दूध सपाव ।
नीच सगने उव- बले धन ऊसर बावै ॥
सज्जन सु साफल मित्त दुजण मु मडइ ।
मभा स्याल धरमोह छइल हुइ बुलवटि छडइ ॥
अहकार करे विप आचरइ निरखइ छाया गति नवी ।
साह कहे भाम सयणा सरि एता मूरिख मानवी ॥21॥

कमल च्यार नह कथ श्रुष्टि ब्रह्मादि न ओई ।
राम श्रुष्टि जे रत्ने, हाथ पिण च्यारे होई ॥
शिव कीधी हुवे श्रुष्टि जोनि को मनिय न जामइ ।
शक्ति तणी हुवे श्रुष्टि श्रीया चढती सग्राम ॥
कीधी न शक्ति न शिवहि की चनुमुज किया न चार मुख ।
कृणहार श्रुष्टि भामउ कहइ पामे को विरलो पुरण ॥22॥

खल नर स्यु खल खट्ट करे स्यु बीज बीजे ।
तग रही जय तार तेथ काइ दूर तविज्जे ॥
पास न रहइ प्रेम, मयल मन माहि न मुवाड ।
पडइ डाव पर भवइ चितउजि ध्यानि न चुक्कड ॥
जालघर भखरि जाम लो सोल हलता सारीये ।
साइ कहे भाम सुयणा सरिस बयरा दूर बिहारिये ॥23॥

गलइ राह ले ग्रहउ, सूर महिर बे साहइ ।
 सूर नह पाल सकइ, नेट न सकइ निरवाहइ ॥
 किण हिक कारण कचण, काम पण किण हिक कीया ।
 पर भुय सहइ सपूर देखि नह पाछा दीया ॥
 मण बाच भ्रम वचन वदण, भला होय मुख भाविये ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस, रिण सिर वदे न राखिये ॥24॥

घणउ होइ धरि घणउ, घणु घामिज्ज घणेरउ ।
 किण ही नावई काम कहउ निस कारण केरउ ॥
 धरथ न बोइ धवर धरथ न न घापण भाणइ ।
 दया धम्म नह रडइ, जीव सक न जाणइ ॥
 नर पच माहि बइसेइ नही आचरण कहिजइ डसउ ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस किसी आय मानव किमउ ॥25॥

नारी चरित नरिउ उदरि पिण गरभ उपज्जइ ।
 पवन पेडि पय पनग, ज्ञान दधि लहर गिगिज्जइ ॥
 द्रुघ घटा ऊनिमे रुदन बाला पिण रीरई ।
 भामन को आघ्यार भग न विस्तारत भल ॥
 ए बात भगम भागा लगइ समि सहीया इद्रसुर ।
 बुण लखइ भेद भामउ कहइ च्यारे दिस बुभ्त चतुर ॥26॥

चदनि विनगा चील हेम परिमल हुइ हीणउ ।
 ससि खडउ सकलक देखि रवि राह दीणउ ॥
 सेस तणइ फणि सहस विक्ख मगजइ ही वसीयउ ।
 सलियण घणु समुद, बलू किण हेव न चसियो ॥
 किणहीव पपि चइ परात्रम, मोटा तोही महण ।
 साइ कहइ भाम सयिणा रसि नर भज तिक नरे हवण ॥27॥

छल सीत छेलते छले बल रावह छलीयो ।
 छल करि दारबइ छिद्र वृष्ण अहि दाणव कलीयो ॥
 भीम सु छल करि भला कीयउ पावन कबीरा ।
 छलिया जेण छय्यल तास अछे छन तेरा ॥
 छल थका न को छीपव सक जेम बेम जीय तही ।
 साह कहै भामो सणा मुणा छलहु बल छिप नही ॥28॥

जस कारण जगदेव कमल दीधउ ककाली ।
 जस कारण बलिराव वचन वामण सु चाली ॥

सवा भार सोवण कण जस कारिण रुधाउ ।
हरिचंद जसरे-हेत, सरव ले रिपा समप्पउ ॥
भल भला नरा साह भाम कहै इम करि जस लीघाइता ।
जम काज आयि सा जाणज्यो, विलव न कीज्यो विलसता ॥29॥

भड सावण भादवे मेह महि मडइ भाभा ।
नव खडे नेपत्ति, अन ओपति बहे भाभा ॥
राजा परजा राव महु सुख माणइ साचा ।
विन छहरित विद्रवइ करइ घरि लीलस काचा ॥
मोभाग त्याग भाले सरो हुवे पुण्य प्राच्छिन पला ।
वरस रा भास भामउ वदइ विहु भल्ले वारह भला ॥30॥

नवल त्रिरी मानवी, अने असवार अयाणउ ।
नवल त्रियाः नानडी काम भारही त्रियाणउ ॥
नवल नेह निम्मियइ पुरप परदेमी पिल्लइ ॥
नवल सींह भर निसठ भडेवन मज्झि इक्लिल्ई ।
हाक्त्याघ काजेखि महेवइ, लालइ पालइ लीजियइ ।
साह कहइ भाम एता सरिस, कह न गाढ न कीजियइ ॥31॥

टींटीडी करि टेक समुद्र सुवयर सभारे ।
चच मरे जल च्यार बीच थइ दूर विडारे ॥
देवि गरुड करि दया जाव मन पखी जाणइ ।
प्रायउ वाहर आप प्रबल पूरिवा पन्थाणइ ॥
धनवन समुद जाइ धूम्रियउ साम्हइ पायनमीयउ मही ।
माइ कहइ भाम आगला त गज्या जायइ नहीं ॥32॥

ठग ठाकुर गुरु ठोऽ पुहप है हीण परम्मल ।
मत्री मत्र बिहूण छाव छर हर छीतर जल ॥
कन कट तऽ तुरग भवहि त्रिप कारक ऊपर ।
छड मत्र फल बडू मोय बलि सूक सरोवर ॥
असत वेद आसत द्विज, नग लाण हुव निवसरा ।
साह कहै भाम सयणा सरिस एता परिहरियइ परा ॥33॥

डाक ढहकइ ताम जाम नीसाण न बजइ ।
मइ गन जा मद भरइ सीहुमुज प्राण न मजइ ॥
सारा ता सग तेज उदे जा भाग न उगइ ।
कयक ता बल करइ पन्थचा धाण न पुगइ ॥

सिंह पति राय भारह सुतन, बधन् भाम इणपरि कहइ ।
 रिण खेत असत तो लग रहे जा सूर न एको सामहइ ॥34॥
 ढलकत नेणा ढाल, मइ धूमत्त महामय ।
 बाजइ जउवषवाव, गभे भाजत लख गय ॥
 फन सहस फुकार भाट बाहइ विष भोला ।
 कान गरुड काढत, पइस जिमजाय पयाला ॥
 ब्रह्ममट खण्डे इक्कीस बिचि सारीखा ये हवइ सही ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस, इक माटा माटा नही ॥35॥
 एरणउ तन् निम्मिये उदर ऊपना अधो मुखि ।
 पामिस जे क्यू पार देह दाखवे नही दुख ॥
 करिसि घरमे निकलक घाट मन भाहे घडियउ ।
 छूटिसि भ्रम छोडतइ पासि माया षड पडियउ ॥
 घर घघ लोम लामइ धणु, थोमे रहियो मोह बिति ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस नर निरणउ चितारि निति ॥36॥
 ता जाल तुवणी सिला गज बावन साही ।
 पूर नदी परवाह वेग निण लौघ बहाई ॥
 गही ममुत्त बिच गई लिखत विधि तिसा लागी ।
 तम बोलि आप मुखि एह गति कौण अभागी ॥
 दोजे न दोष भवरा नरा पूरव लिखियो पल्लिये ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस हलवा मय न हल्लिये ॥37॥
 यिति कीघो थापना धरा आवास तणी घुरं ।
 पनग मामव पेखि सकल थापिया सवे सुर ॥
 दस थाप्या हगपाल, आप बल रहवउ अगाणउ ।
 सात समुद नव दीप, मेरु पाखती मढाणउ ॥
 चिहू खाण जीव चउरासी लख मनिख जनम उत्तम दियइ ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस, काम एता करता कियइ ॥38॥
 दीघा जिण नरिदत सोई नर चावण देसी ।
 कीघा जिण एकाम क्यु हिक् सो चित करेसी ॥
 लख चउरासी जीव तेह जीण मारण लाया ।
 कहो नर बिम करइ रहइ धन धान सघाया ॥
 सिरो जियो जिको साहेव समथ सब घट मज्झि हज्जरिसी ।
 भाम कहइ रखे भारति भिदा, परमेसर सहूपुरिसी ॥39॥

धवल सबल धर धवल वसु खचदा भर बल ।
 जे भेटो ममत तोहा हसतीज बोहल ॥
 देखो ए दिस रात प्रबल गज पुरण न पसे ।
 गई पेरहु पाम बदल भई ऊजैस बसे ॥
 सापुरस ऊन सीगालवो बेहु बराबर हुव बल ।
 साह कहै भामसणो सुणो, धन धनए घोरी धवल ॥40॥
 नादि नाग विष नमड हरख पामड अति हीयैइ ।
 नाट रभ मोहती कला अगि चउसठि कौयड ॥
 नाद भृगध मोहता, नेह कणि मरण न जाणइ ।
 नाट माद जिमलो जीव बालोही जाणई ॥
 लिवनीए नाद सोहइ लब्धि प्राप अराहइ ईसवर ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस, एहनाद अपरम्पार ॥41॥
 पच तत्त्व तइ पिण्ड पच मिली पचउ भारी ।
 पच विपे पखरे सहू भोगवइ ससारी ॥
 पच न्याव अयाय कूड भाचापिण बीजइ ।
 पजी सरिसी परा बहसि किण हालइ बीजइ ॥
 पाडवा पवि नीनो पृथ्वी कहऊ गल भगा कहइ ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस परमेसार पचा महइ ॥42॥
 फल्यो अब बहु फाल फाल बबूले फलीयउ ॥
 पपी परसी जतउ, विमल छाया कजि वीयउ ॥
 बडो हेठ बबूल मूल कटक बहु मुक्का ।
 तरे आयो तलि अब, पविन छाया फल पक्का ॥
 मन हुषा मुक्का मुधिया मिटी छडियउ रलिगवट खरउ ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस, सुगुण निगुण नउ अतरउ ॥43॥
 बोल जितो बोलियइ नेट जितरउ निरवहीयइ ।
 गरष न हव गाठडी गठि बिभ रतन सु ग्रहीयइ ॥
 आलसइ नही छाडि धाग सागर बिम धावइ ।
 सकइ मन स्यालधी बिडे बिम सारदो बाधई ।
 सांभलउ सीन एहनी अवाणि हरभे मुविचारो हियइ ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस कहने पशु न बालियइ ॥44॥
 भगवतइ बडी भाति कहउ किण बीधी कारण ।
 बनि जिनकहुरि बसाइ बसाइ तिणही बनि धारणि ॥
 धारणि लखियवि काइ सक इक दाम न सवभइ ।

पुरसातन अति प्रबल, निरुह अहस्तेइजु निमइ ॥
 साह कहइ भाम मिधुर सदल बरइ जु कनखा कहई ॥
 लामिवा मौल लेखइ नही मोह पराभव जई सहि ॥45॥
 मोटउ जे मेरुहर मेरु वसुधा पर मुणियइ ।
 वसुह धणइ विसतारि, रात समुदा विवि मुणीयइ ॥
 सात समुद घर सहित मुजे को रभ वीय भारी ।
 को रभ वपिल जसाह, सहु अगाल साधारी ॥
 साह कहइ भाम ए भारसाहु, ससा सासा भात्यउसारब ।
 हर हीय सेसा सो हार हुअ गरवा तने कहउ गरव ॥46॥
 जल विण त्रिपा न जाय अन विण जिपति न ईखइ ।
 ज्ञान ध्यान गम अगम, रागुर विण कोइ न सीयइ ॥
 अघग थाग आसइ श्रवण विण पार न पावई ।
 मोहइ भह मेदनी अनल विण डेद्र न आवइ ॥
 घामियइ जम धन कारण, जिम धन कारणि धानियइ ।
 साह कहइ भाम सायणा सरिस प्रभुविण मुगति न पामियइ ॥47॥
 रावण रहायो नही सीसा दस बीस भुजा स्यु ।
 चउदह चउकडि लगई त्रिपुर किहि राज करइ त्यु ॥
 लव जिशा गढ लहइ समुद्र सारिखा सहाई ।
 कु भकरण साकिता मुज रख पालण भाई ॥
 असुरा सुरा अणग जिनेइ छेह नको आये छत ।
 भाम कहै एक सिर विहू मुते मूख जुग जोवण भते ॥48॥
 लालच म कउ लोभ लोभ वीधा जा बयू लाभइ ।
 अब घरणि जे अछइ अवताइ वरसाइ आभइ ॥
 तिम पूरव अवतानि जीव मन माहै जाणइ ।
 अहनिइ जे आफल तिको तिम मिलसी टाणइ ॥
 पर निदा दान परि हरिपरा धम हल मनसा धरे ।
 साह कहै भाम सायणा सरिम कोई मत लालच करे ॥49॥
 वरपा रित वरपता सहू जावा साउ सूखइ ।
 वसत वाउ वजियइ कहर कूपल नह सूखइ ॥
 वेसा नर वाय वधइ एम दीपक अउभायइ ।
 च्याखन त चरइ अठ कटालउ खायइ ॥
 सुर मध्य समुद्र पीघउ सुरा शिव तहि विप पीघउ सही ।
 कुण दीयइ सीख भामउ कहइ, नर साहजा पारउण नही ॥50॥

सिद्ध साधु साधवन्, जती जागी सन्यासी ।
 सोमा सतावरी विप्र पट करम निवासी ॥
 ग्रहसठि तीरथ ग्रहइ, जात्र जमाता जायइ ।
 सुमनि यान सग्रह, नदी नव सय जल हायइ ॥
 जल श्रौय विद जिम जाइयइ थढीया कजि मरियउ घडउ ।
 वसि करउ पच भामउ कह ज्यू घणी बताऊ हुकडउ ॥51॥
 वाप्रो परचउ खरो, आयि आपणी उपाई ।
 बुरे रखे बीमिस्यो भूमि ऊगरइ भलाई ॥
 चानारउ हरिचंद नद बीसल बीसारउ ।
 करण भाज वा कम एम अखियात उबासु ॥
 लग बोई साधि न ले गयउ ले गज्या समबद लीयइ ।
 माट कह भाम सयणा सरिस, बला रहइ रूडा कियई ॥52॥
 सवन सालह समइ बरस छताला बरये ।
 भामू सुदि अपूण्य दमिम दिन मुहरत देख ॥
 सुभ बला सुभ नक्षत्र बिदुर घायक बलाणी ।
 सुसव जिता ससारि सयल ससारि मुहाणी ॥
 सो बीघ भेट सह भामस्यु मनि मगण सज्जन मनी ।
 कवि मुखे मुखे श्रीडा करा बहु विस्तरो ए वावना ॥53॥
 हाम घाल गुण हुवइ माहि अक्षर हू मुत्ती ।
 कवित पुहप सोई कमल सूत्र जमुमाल सजुली ॥
 कू कू चंदन कठिन उक्ति सरसति ले आवे ।
 नयणे सा निरखेवि वयण मइ भामी वाधाव ॥
 भारमल्ल सुन सु भेट भल हूती नवनिध लाभ हूय ।
 घामीस बिदुर हम उच्चरइ एह तिलक रुति भाम तुम ॥54॥
 लल मय नव त्रे लीय हूनी ससि तप दिवायर ।
 पवन नीर परवेस गलिल नवि छडइ मायर ॥
 घष्ट बला सु घटिग गा परषह भर रिर ।
 सगत दीप द्विधमी मम जा जाइ घरइ मिर ॥
 भारमल्ल गुन नुब्रम भेदगर भनीय भल दानार मुम ।
 घामीस बिदुर हम उच्चरइ सो भामा करि राख मुम ॥55॥
 दूजा नइ दूतइउ रिहि वि प्रस्ताव धरिगइ ।
 रिणिहिण माहि कवित नीन विणिहिण गाउगइ ॥

छन्द रिजिहिक छन्द, जिको जेहवा छल जागइ ।
 तिन न तेहवी भेट मांप स कीजइ प्रागइ ॥
 भारम्मल सुनन भाजग दलिद दियो नाम दाता दुजे ।
 बावनी तणा मोटा विरुद, भाम तोहि छाजइ भुजे ॥56॥

इति श्री भामाशाह बावनी मपूण सवत् 1731 वर्षे थावण सुनि 11
 दिन लिपिहृता श्री भडता नगरे महाराजाधिराज महाराणा श्रीमत् श्री जसवतसिंह
 विजय राज्ये ।

शुभ भवतु सवन ॥

‘खुमाणरासो’ में वर्णित भामाशाह के अहमदाबाद-अभियान का वर्णन

‘खुमाण रासो’ की रचना जन मुनि दीनतविजय ने की थी। यह
 श्वेताम्बर जन तपागच्छीय साधु शान्तिविजय का शिष्य था। इसका जन्म का नाम
 दलपत था। इस ग्रंथ की एकमात्र प्रति भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च
 इन्स्टीट्यूट, पूना में संप्रहित है। यह प्रति अत में प्रतित है, अत रचनाकाल
 ज्ञात नहीं होना। ग्रंथ के निर्देशानुसार महाराणा सय्यामसिंह द्वितीय (राज्य
 काल स 1767 से 1790) के काल में इसकी रचना कभी हुई थी। इस ग्रंथ
 में बप्परावल से महाराणा राजसिंह प्रथम तक के मेवाड़ के महाराणाओं का
 वर्णन है। मेवाड़ के महाराणाओं की खुमाण उपाधि होने से इस ग्रंथ का नाम
 खुमाण रासो’ रखा गया प्रतीत होता है। इसमें महाराणा प्रतापसिंह
 और महाराणा अमरसिंह के प्रमग में भामाशाह का भी वर्णन हुआ है।
 यहाँ अमरसिंह के काल में भामाशाह द्वारा अहमदाबाद अभियान का
 विवरण उद्धृत किया जा रहा है।

अमर तणो मन्नीश घर भुजबल भामो साह ।
 बुद्धिबत नैं साम घम वाटक दूठ दुवाह ॥349४॥
 गयो साह गुनर धरा सहरे अमदाबाद ।
 दुस्सासन दूकान परि साजस करि सवाद ॥3499॥
 बेठो सेठ मणी घणी गुमर कर गादीह ।
 बुद्धि अती ओ साप सु, साहजो सावनीह ॥3500॥
 साह करो खत अमशिरें दीजें अमनैं दाम ।
 ब्याज बधोतर दीजीइ राखो माहरी माम ॥3501॥
 खजीनैं खाली थयाह मज्झ विलो मेवाड ।
 अमर राण अम सिर घणी, अनडा विचें उनाड ॥3502॥

दाम सह देस्या पुरा, गिणस्यां तुम उपगार ।
 सरखी सुदी राण री, वणियो इस्यो विचार ॥35003॥
 व्याजें बाई वणी नहि व्यवहारे व्यापार ।
 करी घाण भामा तणी, कांणातर निणवार ॥3504॥
 साह मामहसो वें कहें तुम विण कीनी घाण ।
 चाकर भामा साहरो विण री राखु घाण ॥3505॥
 साह वसैं मेवाड घर कावेडयो कुलभाण ।
 भामो भारहमल तणो राण तणो परधान ॥3506॥
 घमनें साह न मोनखो, साह भामो साह ।
 हुदी घश्चर मीढीइ, भायो ३ इण ठाह ॥3507॥
 गुमर छाह गुमाशनें साह नें करी सलाम ।
 सहाजी भायो सिरघणी हु भोलग गुमान ॥3508॥
 मताए महाराज री, तु साहिव हु दाम ।
 घाप इहा भाया भले, विलसा रिद्ध विलास ॥3509॥
 तुरत बाणीतर तेडियो जपे भामोमाह ।
 करो परज इण बार मे, मन उपजें ऊमाह ॥3510॥
 धन धन अबर जोईई, बार वरस लग तेह ।
 ते जायो मुझ घरयकी तुम चित्त घावें जेह ॥3511॥
 गयवर ने गूडर तुरग, पाखर वबव पनाण ।
 तग तोवरा सीदरा, सा-न सुवल सयाण ॥3512॥
 कप्यड पीया वापडा लीघो घन दो कोड ।
 साथ समान कियो सहू ममाकीया सजोड ॥3513॥
 अमदावाद सु भामासाह अमर पाम भायो उछाह ।
 असी सरस सायें असवार आए बाए अत न पार ॥3514॥
 अनर राणधी रियो जुहार मिलिया साह यकी जूझार ।
 हिमल पन्डि पवडो तरवार ऊठावो थाणा इणवार ॥3515॥
 विपो भयो बारे अरम रण रसिया रजपूत ।
 अमर सुहड चित्त इस्यो, ए जावो रण धूत ॥3516॥



इतिहासकारों और साहित्यकारों की दृष्टि में भामाशाह

कविराजा श्यामलदास

भामाशाह बड़ी जुरघत का आदमी था, महाराणा प्रताप सिंह के शुरू समय में महाराणा अमरसिंह के राज्य के 2॥ तथा 3 वष तक प्रधान रहा, इसने ऊपर लिखी हुई बड़ी-बड़ी लड़ाईयों में हजारों आदमियों का खर्च चलाया। यह नामी प्रधान सम्वत १६५६ माघ शुक्ल ११ (हिज्री १००८ ता ६ रजब=ई १६०० ता २७ ज्यूअरी) को ५१ वष ७ महीने की उम्र में परलोक को सिधाया, इसका जन्म सम्वत १६०४ आषाढ शुक्ल १० (हिज्री ९५४ ता ८ जमादियुल अक्वल=ई १५४७ ता २८ जन) सामवार को हुआ था, इसने मरने के एक दिन पहिले अपनी स्त्री का एक बहो अपने हाथ की लिखी हुई दी और कहा कि इसमें मेवाड के खजाने का कुल हाल लिखा हुआ है, जिस वक्त तकलोफ हो, यह वही उन (महाराणा) की नजर करना। यह खरखाह प्रधान इस वही के लिखे हुए खजाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षों तक खर्च चलाता रहा। मरने पर इसके बेटे जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने प्रधाना दिया था, वह वह भी खरखाह आदमी था, लेकिन भामाशाह की सानी का होना कठिन था।

जब कुंवर कणसिंह बादशाह जहांगीर के पास अजमेर गये, तब शाह जीवराज भी साथ था। जीवराज के पीछे भी महाराणा कणसिंह ने उमर बेटे अक्षयराज का प्रधाना दिया। इसके घर में तीन पुरत तक तान महाराणाओं का प्रधाना रहा। भामाशाह के वाप भारमल्ल का महाराणा सागा ने रणथम्भोर की किलेदारी दी थी जो पीछे सूरजमल्ल हाडा नू दी वाले का मिली इस पर भी किले रणथम्भोर में एतिबारी नौकरी और कुल कारवार भारमल्ल के ही हाथ रहा था। इन खरखाह घराने के आदमी कुल अच्छे ही थे, परन्तु भामाशाह के नाम से ओसवाल जात के हर एक महाजन को घमड हाता है, जिस तरह वस्तुपाल, तेजपाल जो अहलवाडे के सोलखी राजा प्रा के प्रधान थे और जहाने आबू पर जैन के मन्दिर बनवाये, वंसा ही पराक्रमी और तामी भामाशाह का भी जानना

साहिये, जिसकी नौकरी के एवज में वनमान समय तक उसको श्रीलाद का बडिये महाजन महाजना के बड ज-मा में सब पाहेने पेशानो र तिलक पाते हैं, अब उन लागा मे कई मशहूर आदमी नही रहा, जो भा भामाशाह का नाम कुन मुल्क मे मशहूर है ।'

(वीरविनाद, भाग 2, पृ 251 252)

डॉ रघुवीरसिंह

"मेवाड राज्य के कोष तथा आर्थिक मामला का कायमार प्रताप के राज्यारोहण के समय से ही भामाशाह के हाथ में रहा । अन्य सारे शासकीय मामले प्रधान रामा महासहाणी के अधीन थे । प्रताप द्वारा दिये गये ताम्रपत्रों आदि में सन् 1577 के उत्तराद्ध से भामाशाह का नाम लिखा मिलता है । सन् 1578 में रामा महासहाणी के स्थान पर भामाशाह को मेवाड राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया । प्रताप के देहावसान के बाद भी भामाशाह इसी पद पर बना रहा । भामाशाह ने जीवन भर अपने कर्तव्य को बड़ी योग्यता निष्ठा और तत्परता के साथ निभाया, अपनी अनन्य स्वामिभक्ति तथा दूरदर्शितापूर्ण अर्द्धे आर्थिक प्रबंध द्वारा उसन प्रताप की सफलता में महत्वपूर्ण योग दिया ।'

(“राणा प्रताप” पृ 60)

DR KALIKA RANJAN QANUNGO

'The name of Bhamā Shah is remembered throughout Rajputana with as tender affection and reverence as that of Maharana Pratap Bhamā Shah was neither Netaji Palkar nor Nana Fadnavis 1

1 Netaji Palkar was a Maratha patriot and trusted lieutenant of Shivaji Aurangzib tempted him out of his loyalty and religion and made him a muslim

Nana Fadanvis otherwise a great diplomat and patriot of Maharashtra secreted public money and left behind a book to his family giving particulars of his buried wealth

(Studies in Rajput History p 52)

रामवल्लभ सोमानी

'भामाशाह की सेवाओं से मेवाड की ही रक्षा नहीं हुई अपितु समस्त हिंदू जाति का महान् उपकार हुआ । अगर यथासमय धन की

सहायता भामाशाह परिवार नहीं देता तो संभवतः प्रताप मेवाड़ छोड़कर चले जाते। यहाँ का इतिहास कुछ और ही होना। प्रताप की त्याग बलिदान और अपूर्व साहस की कहानी के साथ-साथ भामाशाह की स्वामिभक्ति और देशभक्ति की गाथाएँ सदब गائی जाती रहनी।

(ऐतिहासिक शोध संग्रह पृ 71)

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

जा धन के हित नारि तज पति, भूत तज पितु शीतहि सोई ।
भाई सों भाई सर रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई ।
ता धन को बनिया ह्व गियो न, दियो दुख देश के भारत होई ।
स्वारथ अप्य सुप्त्त होई है तुमरे सम और न या जग कोई ॥”

कवि लोचनप्रसाद पाण्डेय

(1)

राणा मेवाड़-स्वामी अहह ! कर रहे आज हैं देश त्याग
वश स्थाति प्रतिष्ठा हित दुख बन के ले रहे सानुराग ।
पाते ही वृद्ध मंत्री वह वणिक् अहो ! वृत्त ऐसा दुरत
घोड़े प हा सवार प्रखर गति चला शाहभामा तुरत ॥

(2)

जाते तात उठे यो वणिक् हृदय में आपत्ती भाव नाना—
क्यों तात हैं कहीं हो विवश ? पड़ गये लोभ में ता न राणा !
धारा तो है न होगी इस तरह उ हे हीनता से विरक्ति ।
है अर्थों की प्रतिष्ठा अविचल उनकी आत्मना आत्मशक्ति ॥

(3)

हा ! अथामाव ही के हित नृप तजना चाहते हैं स्वप्ने ।
ऐसा मने किसी की उस दिन कहलें या सुना हाय क्लेश ।
हिंदू सूर्य प्रतापी प्रखरतर कहीं, शक्तिशाली प्रताप ?
पीछा श्रीछा प्रपूज प्रबल अति कहीं निन्द्य अर्धानताप ॥

(4)

ो एमी ही अवस्था कम समय हुई प्राप्ति आगे कदापि,
तो तू स्वाभाविकी रे ! बखिब वृषणत वित्त लाना न पायी ॥
ह ह मेवाड़ भाता ! बल अनुपम तू दे मुझ आज ऐसा ,
सब म त्याग युक्त प्रकट कर सकू बार सत्पुत्र जसा ॥

(5)

जो तू आधीन हाके यवन नपति के क्लेश नाना सहगी
तो क्या आधीनता का धनल न हमको नित्य ही माँ दहेगी?
याके स्वातन्त्र्य रूपी मणि हम दुःख के घोर जाली निशा में
जावेगे क्या न हाँ हाँ ! तज कुल गरिमा, मृत्यु ही की दिशा में ॥

(6)

जो श्री मेवाड भू के शुचितर कुल के गव का कीर्ति बतु
जावेगा दूट ता क्या फिर धन जन तू सोच हो लाभ हतु ।
स लेंगे शूरता में हर कर रिपु जो सौम्य की वस्तु सागी
मारे मारे फिरेंगे तब हम मधु की मन्त्रिका ज्या दुश्चारी ॥

(7)

जावेगी मातृ भू जो निकल कर सभी हाथ से हाँ ! हमारे
तो क्या निर्वि प्राणी हम सब हैं व्यथ ही प्राण धारे ?
ऐसा होन न देंगे प्रण कर अपन प्राण का दान देके,
हगि सवा चुकाते अमर निहित हा युद्ध में कीर्ति लेक ॥

(8)

जावेगा काम तरा कब यह धन हाँ ! रे ! कृतघ्नी कठोर,
भामा ! धिक्कार लाखो तब धन बल को निन्द्य नीच धार ।'
भामा ने यो स्वयं हाँ कटु वचन कहै वेद पाके अपार
आँखों से छूटन ल्यो अहह ! फिर लगी रक्त पूर्णाश्रुधार ॥

(9)

स्वामी को शीघ्रता से वन-वन फिरता ढूँढता जाह भामा
पाता अत्यन्त पीडा सख गति नप के कम की हाम । वामा ।
मिथु प्रान्तस्थ सीमा पर जग पहुँचा तो यहा दूर ही से
देखा कीटुम्बियों के मुत नखर को विघ्नता त्याग जा स ॥

(10)

धाड़े में भूमि प आ घर कर हय की राम मन्त्री चला यों
माना मेवाड भू ने स्वमुन निकट है दून भेजा भना ज्यो ।
जाके भवाड मोर प्रभुवर पद प शीश मन्त्री भूषा—
बोला यो नम्रता स नयन युगल, स जाक आसू दहा के—

(11)

हो जावेगी अनाथा प्रभुवर ! जननी ज म भूमि प्रमिद
त्यागगे आप यों जा कुसमय उसका हा विपत्यामन विद्व ।

राणा के चित्त में, यो विपम विपमयी, क्यों हुई आत्म ग्लानी ?
 घेर समार को आ जलद पटलता सूप की कौन हानी ?

(12)

यादों के साथ मेरे घन जन, न रहा साधना का प्रभाव
 मरी ! मैंने दिखाये तब तक आपने क्षाय शक्ति प्रभाव
 हो कमे भोजनों का दुख जब हम को सालता रोज हाथ ।
 रणा वश प्रतिष्ठा तब अब अपनी है कहा, क्या उपाय ?

(13)

रोत हैं राजपुत्र क्षुधित दुःखित हो, अम्ब की मोह देख ।
 छाती जाती फटी है तब इस शठ की हाथ । रे कम रेख ।
 एमी दीन दशा में कब तक रिपु से युद्ध हा हा । करूंगा ?
 क्या श्री स्वाधीनता को अकबर कर में सोप स्वाहा करूंगा ?

(14)

पीछे पीछे सत्ता ही अहह ! फिर रही शत्रु सेना हमारे ।
 धीरे धीरे बुटुम्बी सुभट हत हुये युद्ध में हाथ सारे ॥
 सामग्री एक भा है समर हित नहीं पाम में और शेष,
 भाभी भागो प्रजा भी समय फिर रही भोगता घोर बलेश ॥

(15)

हे मन्त्री ! सामना मैं कर अब सत्ता शत्रुओं का न और
 जाता हू मात्र भू को तजकर इस स दुःख में अथ ठौर ।
 मेरी प्यारी प्रजा को अमित दुःख मिले नित्य मरनिमित्त,
 तोभी स्वातन्त्र्यरूपी वह अहह नहा पा सकी श्रेष्ठ वित्त ॥

(16)

क्या ही निश्चितता से भय तज रिपु का सिन्धु के पार जाके
 है ह मन्त्री ! रट । सुख सहित नया रक्षित स्थान पाके ।
 मेवाडोडार हतु प्रमुदिन करके राज्य की स्थापना में
 भोला की साथ लूंगा अगणित धन के साथ ही मे बना मैं ॥

(17)

धीन पादा निराशा भरित बचन ये भूप के वृद्ध मन्त्री
 शोकात हो गया हा ! श्रवण कर गई दूटसी प्राण-तन्त्री ।
 परा में वृद्ध मन्त्री गिरकर नय के वृष छिन लता स
 श्री राणा स लता यो तब फिर करन प्राथना नम्रता से ॥

(18)

स्वामी हो आप नामी उस अनवर की देह के अनदाता,
 थाया है अन मैंने तब अब तक हूँ आपका अन खाता,
 है द्वारा देह की जो रुधिर, वह बना अन से आप ही के,
 स्वामी हो आप मने तन, धन, जन के भूमि सभी के ॥

(19)

मेरा सबस्व ही है तन सहित प्रभो ! भूपते ! आपका ही
 भागी हूँगा न दू जो तन धन नृप के हेतु मैं पाप का ही ।
 जूता मैं श्री पदों के हित यदि बनवा देह की चम से दू
 ता भी है हाय ! थोड़ा यदि तब ऋण को भूद मैं धम से दू ॥

(20)

है ही क्या शक्ति ऐसी प्रभुवर ! मुझमें दे सकूँ जो सहाय !
 मिहों की गीदड़ों से कब विपद घटी बोलिये हाय ! हाय !
 तो भी है पास मेरे कुछ धन जिसको सौंपता आपको मैं
 पाके सो भूप ! लौटे नहीं सह सकता मातृ भू ताप को मैं ॥

(21)

बीजे रक्षा प्रजा की इस धन बल स देश की जाति की भी
 बीजे हे भूप ! रक्षा इस धन बल से वश की ख्याति की भी ।
 होगी सर्वेश की जो अनुलित करुणा बात सारी बनेगी
 जीतेगे शत्रुओं को विषम विपद में शीघ्र सारी कटेगी ॥

(22)

जो आया काम स्वामी ! यह धन, अपन देश रक्षा हिनाय
 हो जाऊँगा सबश प्रभुवर ! ऋण से छूट के मैं कृताय ॥
 हूँ राणा ! वश्य तो भी यदि बल रहता वृद्ध होता नो म
 तो लेके खडग जाता समर हित जहाँ शत्रु होते वहाँ मैं ॥

(23)

मत्री हूँ वृद्ध हूँ मैं अनहित न कभी मैं कहूँगा नरेश !
 होगा कष्ट प्रणाम डरकर रिपु न त्यागना व्यथ देश ।
 हूँ स्वामी ! लौटियेगा पितरगण का साधक स्वाभिमान
 जान दूँगा हहा ! मैं प्रभुवर ! न कभी आपका अर्थ स्थान ॥

(24)

दखो तो जन्म भू है ददन कर रही हा ! हत जान होके
 शक्ति, श्री बुद्धि विद्या रहित वह हुई आपको आज खोके

माना को दुख रूपी अगम जलधि में मूर्छिता छोड़ जाना,
जाना मैंने यही है ऋण इस युग में पूणता से चुकाना ॥

(25)

बाले यो बात सारी सुन सचिव की वीर श्रीमान् राणा
हा ! मा मवाड भूमे ! मृतक समझ के तू मुझे भूल जाना ।
जो नाना आपनाए नीत नई तुझ प एक से एक घाई,
मेरी ही मूर्खता से ग्रहण ! सकल ही रे गई हैं बुलाई ॥

(26)

मन्त्री की स्वामीभक्ति प्रकट लख तथा देख के आत्म त्याग
बोल राणा प्रतापी वचन नर पुन तुष्ट हो सानुराग ।
मन्त्री पा हो गया मैं सुचतुर तुमसा आज भामा ! कृताघ,
भेजा क्या मातृ भू ने रचकर तुमरो दश रक्षा हिताय ॥

(27)

पूजा के योग्य तू है, बोलिक सजिव श्रीशक्ति की मूर्ति तू है ॥
है आहार धन तरा वह धन जन्मी भक्ति की मूर्ति तू है ॥
तुझ में स्वामी भक्ति चतुर मन्त्री वर आत्मा त्यागी वीर ।
भारत में क्या दुर्लभ है इस वसुधा में भी धार्मिक धीर ।

('प्रभा 5 जून 1913 ई खण्डवा)

3 सहायक ग्रन्थसूची

- 1 भा. डॉ. गोरीशंकर हीराचंद, उदयपुर राज्य का इतिहास जिल्द 1 2
जमेर, वि. स 1988
- 2 कविराव मोहनसिंह और सावलदान धाशिया (मम्मा) 'प्राचीन राजस्थानी
गीत भाग 11, साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ उज्जयपुर
- 3 कविराजा श्व मन्त्री वीरविनोद, उदयपुर 1890
- 4 महाराज जगन्नीशसिंह राजपूताने का इतिहास पहला भाग हिंदी साहित्य
मंदिर जोधपुर 1937
- 5 गोपबलीय अयोध्याप्रसाद राजपूताने के जनवीर हिंदीविद्यामन्त्रिर पहाड़ी
धीरज देहली 1933
- 6 दुग्गड बाबू रामनारायण, राजस्थान रत्नमाला भाग 1 तरंग 2
मेवाड़ का इतिहास उज्जयपुर, 1913

- 7 पालीवाल, डॉ देवीलाल (सम्पा), महाराणा प्रताप स्मृतिग्रन्थ, साहित्य सस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर 1969
- 8 पालीवाल, डॉ देवीलाल, प्राचीन डिगलनाव्य म महाराणा प्रताप' भूमिका, अक्षणिमा प्रकाशन, उदयपुर
- 9 भटनागर, डॉ राजेन्द्रप्रकाश, (सम्पा), समरकाव्यम्', उदयपुर,
- 10 भट्ट, रणछोड, 'राजप्रगति महाकाव्यम्' (सम्पा डा मोतीलाल मेनारिया) साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, 1973
- 11 भण्डारी, सुखसम्पतराज एव ग्रन्थ मोसवाल जानि वा इतिहास ग्रानवात पञ्चशिख हाऊस, भानपुरा, इन्डोर, 1934
- 12 भानावत डॉ नरेन्द्र एव सोगानी डा कमलचन्द, (सम्पा) जन सस्वृति और राजस्थान, जयपुर 1975
- 13 डा रघुवीरसिंह महाराणा प्रताप, प्रकाशन विभाग, सूचना एव प्रसारण मन्त्रालय भारतसरकार, पटियाला हाऊस नई दिल्ली
- 14 शर्मा डॉ गोपीनाथ 'राजस्थान का इतिहास' प्रथम भाग शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा 1973
- 15 ' ' मेवाड भुगल सम्बन्ध' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1976
- 16 " " " 'राजस्थान के इतिहास के सोन पुरातत्व भाग 1 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1973
- 17 श्रीवास्तव, डॉ आशीर्वादीलाल अक्बर महान् भाग 1 शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, 1967
- 18 सरकार जदुनाथ भारत का सय इतिहास मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल 1971
- 19 मुखेश, पंकज कुमार जन मामास ह ऐतिहासिक नाटक प्रयमावृत्ति ना तीद म प्र
- 20 सोमानी, रामचन्द्र एतिहासिक शोध मग्रह हिन्दी साहित्य मन्त्रि जोधपुर 1960
- 21 हेमरतन गोरा पद्मिनी कथा चक्रपद्म राजस्थान प्रच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

पत्र-पत्रिकाएँ

- 1 त्यागभूमि — वष 3 अंक 4
- 2 मम्भारती — (पिलानी) वष 15 अंक 3 (अक्टूबर 1967) ।
- 3 वीरशासन — 1 दिस 1952 16 दिसम्बर 1952 1 जनवरी 1953
- 4 शोधपत्रिका — (उदयपुर) वष 14 अंक 1 वष 14 अंक 2,
15 वष अंक 1, वष 19 अंक 4
- 5 हिंदुसंसार — दापावली, अंक कार्तिक वृ 30 स 1982 वि

ENGLISH

2

- 1 Beveridge Henry— English Translation Akabar Nama Vol
2 3 Asiatic Society of Bengal, Calcutta
- 2 David Major Alfred— Indian Art of war Atmaram and sons
Delhi
- 3 Qanungo Dr Kalika Ranjan — Studies in Rajput History
(S Chand & Co Fountain Delhi 1959)
- 4 Sarakar Jadunath— Military History of India
- 5 Sharma Dr G N — Social Life in Medieval Rajasthan 1500
1800 A D (Lakshmi Narain Agarwal Agra 1968)
- 6 Somani Ramvallabh— History of Mewar part 1 (Jaipur 1976)
- 7 Tod Lieut Col James — Annals and Antiquities of Rajasthan
Vol I (m/s Routledge & Kegan Paul Ltd
London Reprinted in India by M N
Publishers New Delhi 1983)



मेवाड़ में जैनधर्म का योगदान

जनधर्म बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। यद्यपि कभी यह सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैल चुका था परन्तु कालान्तर में इसका विशेष प्रचार प्रसार हिन्दु भारत में विशेषकर राजस्थान गुजरात महाराष्ट्र कर्नाटक और पंजाब में रहा। जनधर्म के सिद्धांतों और शिक्षाओं ने भारतीय समाज को बहुत प्रभावित किया। इस धर्म में स्त्रियों के सम्मान को बढ़ाया और उनको भी कृति को अधिकारिणी माना। भारत में प्रचलित मासाहार की बहुलता का जनधर्म के विकास के कारण भारी धक्का लगा और यहाँ अधिकांश लोग पुनः शाकाहारी बने। यद्यपि जिन लोगों ने जैनधर्म अंगीकार नहीं किया परन्तु उन्होंने भी मासाहार के दुर्गुण और शाकाहार के सद्गुण को वैज्ञानिकरीत्या समझा और शाकाहार को अपनाया। इसी से भारत आज शाकाहार प्रधान देश माना जाता है। शूद्रों का समाज में बहुत निम्न स्थान था। शूद्रों के उद्धार के लिए जनधर्म में समानता को मानते हुए जाति-पाति के भेद-भाव को समाप्त किया गया। जनधर्म में पुरुषार्थ को प्रधानता दी गई है और इसी के द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है। धर्म-पालन में भी कम को प्रधानता दी जाती है। कहा जाता है—कर्म सूर्य से धर्म सूर्य।

जनधर्म का इस देश में ही स्वतंत्र रूप से विभिन्न दर्शनों और धर्मों की भाँति उद्भव और विकास हुआ था। इसलिए जनधर्म में प्रचलित समस्त मान्यताएँ इसी देश की देन हैं किसी अन्य देश की नहीं जो पारम्परिक है।

राजस्थान में प्रारम्भ से ही जनधर्म का पलायन हुआ था। चित्तौड़गढ़ के पास माध्यमिका (प्राकृत रूप—मज्झिमिका) नामक नगर जो अब नगरी नाम से प्रसिद्ध है प्राचीन काल में जना का भी उच्च केन्द्र था। कहा जाता है कि मथुरा में हुई सगिति में भाग लेने के लिए मज्झिमिका से भी जनाचार्य गये थे। मज्झिमिका के उजड़ जाने के बाद चित्तौड़गढ़ जनधर्म के दिगम्बर एवं श्वेताम्बर मतों का प्रमुख स्थान बना। मेवाड़ की प्राचीन राजधानी नागदा और भाड़ा भी जनधर्म के अच्छे केन्द्र थे। मारवाड़ में भीनमाल जालोर नाटोल नाडलाई, धाबू जसलमेर आदि जनधर्म के प्राचीन केन्द्र रहे।

जनधर्म के फलन फूलन की दृष्टि से मेवाड़ का नाम सर्वोपरि है। यहाँ पर जनधर्म ने समाज के हर प्रकार के क्षेत्र में विशिष्ट पुरुषों को जन्म दिया। राजनीतिक, सैनिक और प्रशासनिक क्षेत्र में हमीर के काल में जाल महता राणा साखा का मंत्री नवन्खा गोत्र का रामदेव कुभा के काल में

बेला मडारी गुणराज जीजा बघेरघाल धरणाक शाह सागा द्वारा नियुक्त
रणधम्भोर का कानगर भारमल जो राणा उदयसिंह के बाल में उच्चर पर
रहा, राणा रतनसिंह के बाल में उसका मंत्री कर्माशाह राणा प्रतापसिंह का
मंत्री भामाशाह राणा अमरसिंह का मंत्री जीवाशाह राणा कणसिंह का मंत्री
अनवरराज राणा राजसिंह का मंत्री दयालशाह राणा भीमसिंह का मंत्री सोम
दास गांधी मेहता मालदास मेहता देवीचंद आदि के नाम विशेष रूप से उल्ले
खनीय हैं। इन्होंने देशभक्ति और स्वामिभक्ति से इतिहास में अपना विशिष्ट
स्थान बनाया। चित्तौड़ का राज्य पुन प्राप्त करने में जाल मेहता से हमीर
को बड़ी सहायता मिली थी। राणा सागा के समय सोलाशाह का वस्त्र का
व्यापार चीन और दूर देशों में चलता था। उदयसिंह को चित्तौड़ पर आधि
पत्य कराने में चीन मेहता ने जो दान दिया था। बीकानेर के कमचन्द बच्छा
यत मेहता के वंश में, जो भामाशाह की पुत्री जगीसा बाई से चला, अमरचंद
मेहता का मांडलगढ़ की किलदारी सौंपी गयी थी।

जनवीरों की कई स्त्रियां ने जीहूर में अपने प्राणों की धाहूती दी कई
मर्ती हुई और कुछ युद्ध में भी लड़ी। दयालशाह की पत्नी पाटनदे ने पति
के साथ रहकर युद्ध में वीरता दिखाई थी और अंत में मुसलमानों के हाथ में न
पड़े इस विचार से दयालशाह अपना स्त्री को मार कर लाट आया। इसी प्रकार
जनघमानुयायियों ने मेवाड़ में धर्म सभ्यता समाज ललित कलाओं स्थापत्य मूर्ति
चित्रकला, संगीत आदि और साहित्य के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान किया।
आहाट में विहित जन ग्रन्थों की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों पर मेवाड़ चित्र
कला के सबसे पुराने चित्रांश मिलते हैं जिससे उस पृथक् शैली के विकास का
पता चलता है। यह ग्रंथ 13 वीं शती के मिले हैं। थावरप्रतिग्रमणमूत्रचूर्णी
(स 1309) की यहाँ पर विहित प्रति आजकल बोस्टन संग्रहालय (अमेरिका)
में सुरक्षित है।

प्रायः इन जनघावस्त्रियों ने उत्तर धार्मिक सहिष्णुता का परिचय
दिया और मेवाड़ के गौरव सम्मान और प्रतिष्ठा को संरक्षण बनाय रखने में
उपयोगी भूमिका अदा की।

जनधर्म के कुछ सुप्रदायों जैसे तपागच्छ तरापथ आदि की स्थापना भी
मेवाड़ में हुई थी।

अधिकांश जैन मूल में राजपूत या क्षत्रिय वंशी थे। जनों के गोत्र एवं
जापें ज्या की त्या राजपूतों के समान पायी जाती हैं। मेवाड़ में जनधर्मों प्रायः
मंत्री प्रधान किलदार फौज के अधिपति (सेनापति) आदि पदों पर रह



ज्द्रप्रकाश भटनागर

सितम्बर 1942

हानजी का हाटा, उदयपुर

ए (इतिहास),

च डी (इतिहास)

गचाय (स्वर्ण पदक प्राप्त),

ए (जाम),

डो (आयुर्वेद)

र राजकीय आयुर्वेद महा

य उदयपुर (राजस्थान)

केपुर का इतिहास,

आयुर्वेद का इतिहास

भनव स्त्रीरागविज्ञान,

भनव मानस रोगविज्ञान,

आयुर्वेद प्रथम कल्याणकारक-

भेदन आदि 15 से अधिक

300 से अधिक लेख एवं

प्रकाशित ।